मन दर्पण

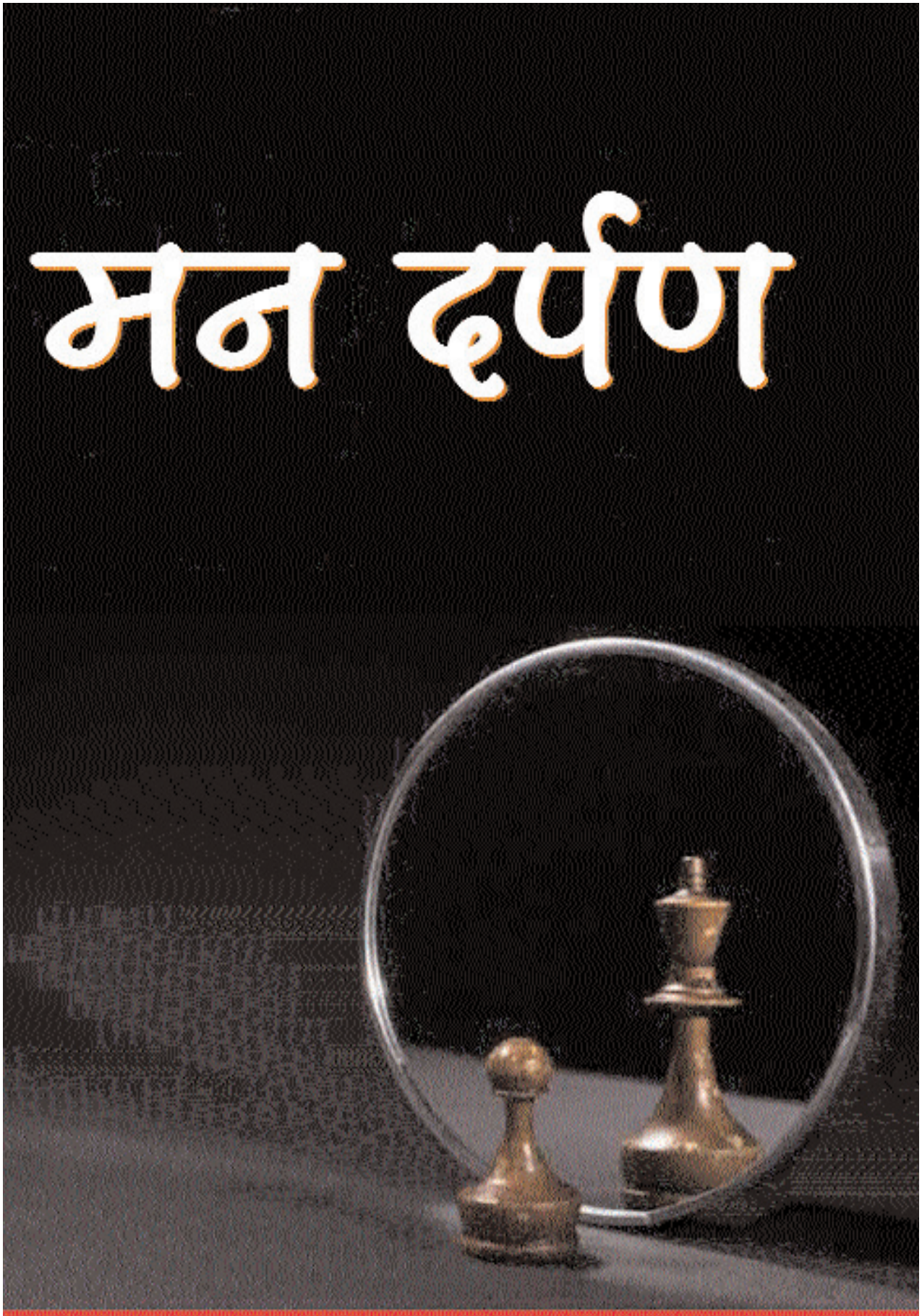

राजेश खण्डेलवाल

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	पेज संख्या
1.	अभेद ही नहीं, अजेय भी रहा	8
2.	चहकता ही नहीं, महकता भी हूं	10
3.	अनूठा अपनाघर	13
4.	वो भी क्या दिन थे	18
5.	रचती है सृष्टि, झेल रही कुदृष्टि	20
6.	दूर होते अपने, दरकते सपने	22
7.	वादे हैं, वादों का क्या?	24
8.	अरमानों पर बिजली, उम्मीदें पानी-पानी	27
9.	चुकाता दूध का फर्ज और माटी का कर्ज	29
10.	कलियुग का शिष्टाचार	31
11.	मिलूं तो जन्नत, ना मिलूं तो मन्नत	33
12.	हरि रूठे गुरू ठौर है, गुरू रूठे नहीं ठौर	36
13.	छला ही नहीं, ठगा भी जाता	39
14.	नाजायज कुछ नहीं, सब कुछ जायज	42
15.	बाजारवाद का रंग न कर दे साख भंग	44

लेखक व सम्पादक

राजेश खण्डेलवाल

(स्वतंत्र पत्रकार)

14, महादेव गली, गंगा मंदिर

भरतपुर (राजस्थान) 321001

मोबाइल: 9414293372

Email; raj.bhawana@gmail.com

गिरिराज धरण, प्रभु तेरी शरण

स्व. श्रीमती शकुंतला देवी धर्मपत्नी श्री बाबूलाल गुप्ता

निर्वाण तिथि - 10 मार्च, 2014

चरणों में समर्पित

नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः।
नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमा प्रिया।।

-महर्षि वेदव्यास

माता के समान कोई छाया नहीं है, माता के समान कोई सहारा नहीं है।
माता के समान कोई रक्षक नहीं है और माता के समान कोई प्रिय चीज नहीं है।

यश-अपयश सब विधाता के हाथ

मैं राजेश हूं...! सांसारिक जीवन में इसी नाम से जाना जाता हूं। जन्मते ही मिला संघर्ष रूपी उपहार अब भी मेरी धरोहर है। संकट कभी मेरी निष्ठा को टस से मस नहीं कर पाए, जिस पर गर्वानुभूति होती है तो मेहनत का अपेक्षित प्रतिफल नहीं मिल पाना खलता भी है पर यश-अपयश सब विधाता के हाथ मान आत्म संतुष्टि ही मेरा गहना है।

राजेश खण्डेलवाल

मेरा जन्म 3 अगस्त, 1972 को ब्रज-मेवात की संगम स्थली नगर (भरतपुर-राजस्थान) कस्बे से महज 5 किलोमीटर दूर दुंदावल गांव के वैश्य कुल के कोड़िया परिवार में हुआ। मेरे जनक पूज्य श्री बाबूलाल गुप्ता जी का आशीषभरा प्यार आज भी साथ है पर अब मैं पूजनीया जननी श्रीमती शकुंतला देवी जी के लाड़-दुलार से महरूम हूं।

जीवन की पहली गुरू और पूजनीया मां से मिली शिक्षा आज भी मेरे लिए प्रेरणादायी है। त्याग, तपस्या और संस्कार ही नहीं, कड़ी मेहनत व ईमानदारी मुझे पूज्य पिताजी से विरासत में मिली। परिवार में छोटा होने के नाते भाई-बहनों का स्नेह भी भरपूर मिला है। मेरी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा पैतृक गांव में हुई तो आगे की पढ़ाई के लिए नगर (भरतपुर) में रहना पड़ा। अन्याय की खिलाफत का गुर शिक्षाकाल में सीखने को मिला। तत्पश्चात लोक प्रशासन में स्नातकोत्तर की डिग्री पाई।

युवावस्था की दहलीज पर कदम रखने के साथ ही पत्रकार के रूप में कलम थामी तो राजस्थान पत्रिका ने उसे धार दी। कलम साधने की मेरी साधना आज भी अनवरत जारी है। इस दौर में उतार-चढ़ाव के कई मौके ऐसे भी आए, जो अब भी जहन में हैं। मेरा सौभाग्य रहा कि राजस्थान पत्रिका के आओ गांव चलें कॉलम के रोमांचक सफर ने ही मेरी रोजी-रोटी की फिक्र ही नहीं मिटाई, बल्कि जिला से लेकर जयपुर मुख्यालय तक कई पदों पर काम करने का सुअवसर मिला।

सक्रिय पत्रकारिता के करीब ढाई दशक के सफर में कई बार अन्याय की खिलाफत की तो भ्रष्टाचार से भी डटकर संघर्ष किया। कई बार तो ऐसी चुनौतियां भी झेली, जो मेरी ही नहीं, संस्थान तक की साख धूमिल कर सकती थीं, लेकिन आखिर साबित हुआ कि सांच को कभी आंच नहीं।

इसी दौर में सात जन्मों के बंधन में बंधा तो जीवनसंगिनी बनी श्रीमती सोनू खण्डेलवाल ने मेरी भावना को बखूबी समझा। आंगन में किलकारी गूंजी तो मैं भी चहक उठा पर लाड़ली तो जन्मते ही ईश्वर की प्यारी हो गई। मेरे लिए यह गम भुला पाना नामुमकिन है। आज मेरी बगिया में पीयूष-आयुष नामक बेटे रूपी दो फूल खिले हैं।

सक्रिय पत्रकारिता के करीब ढाई दशक के सफर में कई बार अन्याय की खिलाफत की तो भ्रष्टाचार से भी डटकर संघर्ष किया। कई बार तो ऐसी चुनौतियां भी झेली, जो मेरी ही नहीं, संस्थान तक की साख धूमिल कर सकती थीं, लेकिन आखिर साबित हुआ कि सांच को कभी आंच नहीं। संस्थान (राजस्थान पत्रिका) के अंदर और बाहर मान-सम्मान भी भरपूर मिला। जीवन सफर में वक्त का वह दौर भी आया, जब मुझे सक्रिय पत्रकारिता को विराम देना पड़ा। ऐसा करना आसान नहीं था, मगर कलम चलाना नहीं छोड़ा।

-राजेश खण्डेलवाल
स्वतंत्र पत्रकार
भरतपुर (राजस्थान)

मन दर्पण विचार प्रतिच्छादित करने का स्तुत्य प्रयास

मन दर्पण में मन के विचारों की अनुभूति को प्रतिच्छादित करने का प्रयास स्तुत्य है। मानवीय संवेदनाओं को शब्दों में निरुपित किया गया है। आत्मकथ्यात्मक शैली में विषयवस्तु की अन्तर्मन गहराइयों में उतरने का उद्यम श्रेष्ठतम है। अजेय दुर्ग लोहागढ़, केवलादेव राष्ट्रीय अभ्यारण्य, अपना घर की सहजानुभूति को भावपूर्ण अभिव्यक्ति को अभिहित कर लेखक ने प्रशंसनीय कार्य किया है। वर्तमान परिवेश में नारी की वास्तविकता की पीड़ा तक अपने शब्दों में सुगढ़ता से मां सरस्वती नन्दन के श्रेष्ठतम प्रजापति चाक पर गढ़कर उसे शीशे में लगाकर समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है। बेरोजगार युवाओं के दर्द, किसान की वास्तविक स्थिति, रुपए का महत्व, गुरु, मतदाता और राजनीति के साथ पीत पत्रकारिता को भी मन दर्पण में बेहिचक दिखाकर पुस्तक में अच्छा मूल्यांकन किया है। अस्तु: मन दर्पण की यह पुस्तक सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक के साथ पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति की वास्तविक छवि को प्रदर्शित कर पाठकों को अच्छी सामग्री सुलभ करा रही है। इसका पाठकों को नूतन लाभ प्राप्त होगा। पुस्तक के लेखन की सार्थकता श्रेष्ठतम होगी।

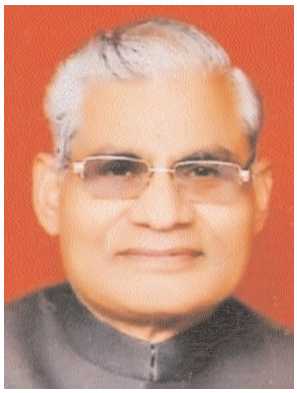

मनमोहन अभिलाषी

मन दर्पण को मन में रखकर सोनू ने जिसे दिखाया है,
पत्रकारिता, बेरोजगारी, किसान भी उसमें पाया है।
राजेश की बनी प्रेरणा सृजन में जीवन साथी,
लोहागढ़ का अजेय शौर्य, केवलादेव की पाती।
धन्य पिताश्री बाबूलाल जी शकुन्तला ब्रह्मलीन माता,
जिसके गर्भ ये हीरे-मोती दिनेश वकील हैं भ्राता।
परिवार की फुलवारी में सुगंध सुवासित हो रही है,
नूतन विषय राजेश कलम निशि-दिन बो रही है।
अनछुए नहीं कोई रहा है जो इनके हाथ न आया हो,
अपना घर, बेरोजगारी, किसान, नारी दर्द न पाया हो।
रुपया-पैसा, गुरु, मतदाता राजनीति भी आ गई है,
मन दर्पण के पृष्ठ देखें तो सब में ही वह छा गई है।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित!

-मनमोहन गुप्ता अभिलाषी
वरिष्ठ साहित्यकार
भरतपुर (राजस्थान)

अभेद ही नहीं, अजेय भी रहा

मेरी माटी का कण-कण शौर्य, वीरता और पराक्रम से सराबोर है तो इसकी सौंधी महक सबको भाती है। कभी मुगल सल्तनत तो कभी अंग्रेजी हुकूमत के हमले झेले पर ना कोई मुझे भेद सका और ना ही पराजित कर पाया। इसी खूबी से मुझे आयरन फोर्ट यानी लोहागढ़ का नाम मिला।

मेरा उद्भव अदम्य साहस का परिचायक है। 1733 ई. में मेरे जनक महाराजा सूरजमल ने खेमकरण सोगरिया पर आक्रमण कर फतेहगढ़ी को जीता और 1743 ई. में बसंत पंचमी के दिन मेरी यानि लोहागढ़ दुर्ग (भरतपुर) की नींव रखी, जिसमें कभी कोई सेंध नहीं लगा सका। शूरवीरता से ओतप्रोत ही नहीं, मैं अभेद और अजेय भी हूं, जिस पर मुझे आज भी गर्वानुभूति होती है। योगेश्वर श्रीकृष्ण वंशज और मेरे अपनों की वीरता की प्रसिद्धि बयां करने को आठ फिरंगी, नौ गोरा, लड़े जाट के दो छोरा वाली कहावत ही पर्याप्त है, जिसे आज भी बखूबी कहा-सुना जाता है।

शूरवीरता से ओतप्रोत ही नहीं, मैं अभेद और अजेय भी हूं, जिस पर मुझे आज भी गर्वानुभूति होती है। योगेश्वर श्रीकृष्ण वंशज और मेरे अपनों की वीरता की प्रसिद्धि बयां करने को आठ फिरंगी, नौ गोरा, लड़े जाट के दो छोरा वाली कहावत ही पर्याप्त है, जिसे आज भी बखूबी कहा-सुना जाता है।

मेरी बनावट विलक्षण ही नहीं, जगह भी ऐसी चुनी, जहां दूर-पास से पानी सिमटकर कटोरे की शक्ल अख्तियार कर लेता तो दूर ही नहीं, पास से भी कोई मुझे नहीं देख पाता, जो मेरे अजेय रहने का प्रमुख आधार बना। रूपारेल और वाणगंगा नदी के संगम पर अनोखा और सुदृढ़ सिर्फ मैं ही हूं। देश ही नहीं, दुनियाभर में मेरा स्वरूप अद्वितीय रहा तभी तो सतत एक ही पचरंगी पताका फहराने का गौरव पाया।

भेद पाना तो दूर मुझ तक पहुंचना भी नामुमकिन रहा। मेरी सुरक्षा के बेमिसाल प्रयोग से गोरी (अंग्रेज) सेना को चारों खाने चित्त होना पड़ा। उन्नत विशाल और सुदृढ़ बुर्ज व प्राचीरें तथा आन-बान-शान को मर मिटने वाले मेरे अपनों (योद्धाओं) की शूरवीरता ने इतना अभेद व अजेय बना दिया कि मेरी ओर जब किसी ने कुदृष्टि डालने

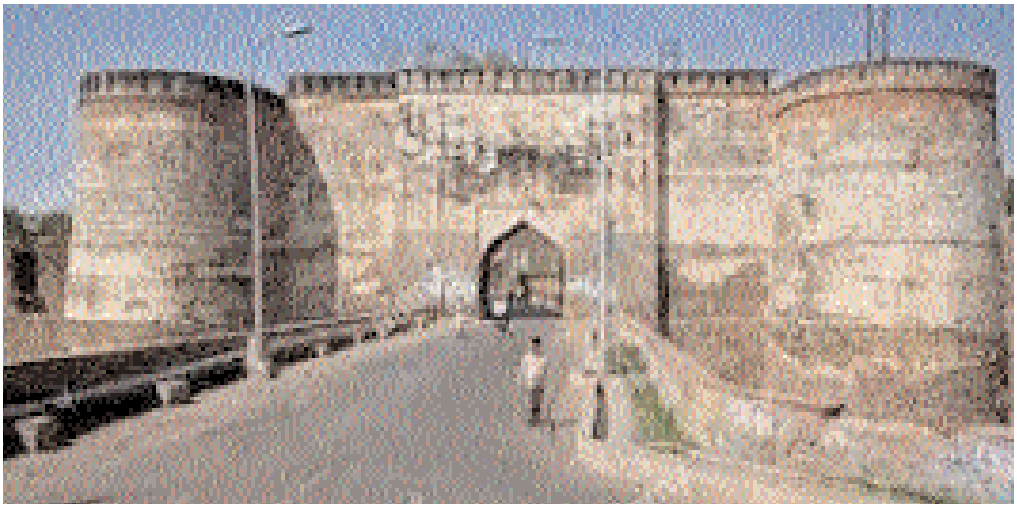

की चेष्टा की तब ही उन्हें मुंह की खानी पड़ी, पर अब जर्जर दीवारें, मैली सुजानगंगा, पट चुकी खाईयां ही नहीं, मटियामेट हो चुका कच्चा डंडा (परकोटा) भी मेरी उपेक्षा, अनदेखी और बदहाली को बयां कर रहा है, जो मुझे तो खलता है पर शायद जिम्मेदारों को इसका मलाल नहीं। यह कहना अतिरंजित नहीं होगा कि मुझे अपनों ने मारा, गैरों में कहां दम था?

मेरे जनक ने जीवनकाल में मुगल, अंग्रेज, मराठा, राजपूत और होलकरों से 80 युद्ध लड़े और सब पर फतेह पाई। वे एकमात्र ऐसे शासक रहे, जिन्होंने दिल्ली पर ना केवल कई बार हमला किया, बल्कि दिल्ली का भविष्य भी कई बार अपनी मुट्ठी में कैद रखा।

मैंने वह वक्त भी जीया, जब हिंदुस्तान में मुगलों का डंका बजता। तब उनकी भारी-भरकम सेना के आगे तमाम राजा-रजवाड़े नतमस्तक रहे पर उस दौर में भी एक मात्र ऐसे राजा मेरे जनक महाराजा सूरजमल रहे, जो मुगलों के सामने बिना डरे अड़े ही नहीं, बल्कि सिर उठाकर डटे भी रहे। मैं ही नहीं, देश-दुनिया भी उनकी मुरीद रही। उनकी वीरता के किस्से आज भी प्रेरणास्पद हैं।

मुझे और मेरे अपनों को कभी कोई राजा जीत नहीं सका। मुगलों, मराठों ने कई बार हमला किया, लेकिन हर बार पराजित रहे। वर्ष 1805 में ब्रिटिश सेनापति लार्ड लेक की अगुवाई में अंग्रेजी सेना ने चार बार हमला किया, लेकिन हर बार विफल रही। तब ब्रिटिश सेनापति लार्ड लेक ने ही मुझे आयरन फोर्ट यानी लोहागढ़ दुर्ग (लोहागढ़ किला) नाम दिया।

मेरा नामकरण भी रोचकता से भरा रहा है। मेरे जनक ने दिल्ली से महज 2 घंटे और आगरा से सिर्फ 1 घंटे की दूरी पर ना केवल मेरा साम्राज्य कायम रखा, बल्कि मैं ऐसा किला बना, जिस पर न कभी मुगल सल्तनत तो न ही कभी अंग्रेज अपना झंडा फहरा पाए।

मुझे और मेरे अपनों को कभी कोई राजा जीत नहीं सका। मुगलों, मराठों ने कई बार हमला किया, लेकिन हर बार पराजित रहे। वर्ष 1805 में ब्रिटिश सेनापति लार्ड लेक की अगुवाई में अंग्रेजी सेना ने चार बार हमला किया, लेकिन हर बार विफल रही। तब ब्रिटिश सेनापति लार्ड लेक ने ही मुझे आयरन फोर्ट यानी लोहागढ़ दुर्ग (लोहागढ़ किला) नाम दिया।

मेरी स्थापना देश-धर्म और मानवीय मूल्यों के गौरव की रक्षा के लिए हुई, जिसका इतिहास स्वाभिमान, शौर्य, साहस, पराक्रम व धार्मिक सहिष्णुता का जीवंत दिग्दर्शन है। संकीर्ण विचारों का धर्मान्ध मुगल शासक औरंगजेब जब हिन्दू धर्म को नष्ट करने के उद्देश्य से मेरे अपनों पर घोर अमानवीय अत्याचार कर रहा था, तब धर्म की रक्षा और बहन-बेटियों की अस्मत बचाने की खातिर वीर सपूतों ने अपने रक्त से मुझे सींचा। मेरे रणबांकुरों ने अत्याचार के विरुद्ध सुदीर्घ और निर्णायक संघर्ष किया, जो कभी पद और अंलकरण के भूखे नहीं रहे। अत्याचार-अनाचार व दमन की जमकर खिलाफत ही नहीं की, बल्कि त्याग, बलिदान और समर्पण भी खूब किया।

वास्तु एवं स्थापत्य कला का मैं ऐसा बेजोड़ नमूना हूं, जो अतुलनीय है। चित्रकारी मनमोहक तो मेरा नैसर्गिक सौन्दर्य दर्शनीय है। ऐतिहासिक व सांस्कृतिक विरासत का धनी ही नहीं, उत्कृष्टता का द्योतक भी हूं।

जन कल्याण और परोपकार मेरे अपनों की उदारता रही तो उनके वैभव और समृद्धता की याद आज भी मेरे जहन में है। किले, महल, मंदिर, सरोवर, बाग-बगीचे अनूठे हैं, जो हर किसी को लुभाते ही नहीं, बल्कि नई पीढ़ी भी उनके बारे में जानने और समझने को आतुर नजर आती है।

इतना ही नहीं, मेरी धरोहरें, शिलालेख, प्राचीन सिक्के, लौह स्तंभ व अन्य ऐतिहासिक, पुरातात्विक अवशेष आकर्षक का केन्द्र हैं तो नैसर्गिक प्रेम को परिलक्षित करते हुए मैं उन्नत साहित्य व कलाओं के साथ उत्पादन, व्यापार व वाणिज्य की दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न व सुरक्षित रहा। मैं संस्कार ही नहीं, संस्कृति की ऐसी मिसाल हूं, जिसके सब कायल हैं। अपनी माटी से मुझे भी उतना ही प्रेम है, जितना योगेश्वर श्रीकृष्ण से राधारानी को है। मैं मीरा के जस दीवाना तो प्रहलाद की मानिंद उसका भक्त भी हूं।

मैं घना हूं...!

चहकता ही नहीं, महकता भी हूं

पग-पग पर कलरव करते खग और जैव विविधताओं से ओतप्रोत कण-कण मेरी शौहरत को बयां करते हैं। परिन्दों के लिए मेरा आंगन सबसे सुरक्षित स्थल है, जिससे मुझे भी स्वर्गानुभूति होती है पर पहले इनके शिकार का गम भी मैंने कम नहीं सहा। सात समन्दर पार साइबेरिया (रूस) से उड़कर मेरे आंगन में पंख फैलाते सारस ने मुझे विश्व में अनूठी पहचान दिलाई पर अब इनका विलुप्त होना मुझे खूब सालता है। उद्भव ही नहीं, मेरा नामकरण भी रोचकता से लबरेज है।

मौसम के अनुरूप मेरा रंगरूप भी बदलता रहता है। वर्षाकाल में बादलों की गर्जना के बीच फूलों की सुगंध से मेरा पूरा परिसर महक उठता है तो शीतकाल में मेरा सौन्दर्य देखते ही बनता है तभी तो देश-दुनिया से मुझे निहारने के लिए आने वाले पर्यटकों की चहलकदमी होने लगती है, जो सर्दी के साथ बढ़ने लगती है। बासंती पतझड़ भी खूब लुभाता है, पर गर्मियों में ना तो चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई पड़ती है और ना ही पदचापों से उड़ती धूल दिखती है।

लगभग 29 वर्ग किलोमीटर में फैला मैं ऐसा सैरगाह हूं, जहां दुनियाभर से करीब 4 सौ प्रजाति के हजारों पखेरू प्रवास पर आते हैं, जिनकी अठखेलियों से मेरा परिसर चहचहाने लगता है। कौतुहल से भरे ये अद्भुत नजारे देश-दुनिया से आने वाले हर किसी को लुभाते हैं, जिनसे मैं शोधजनक ही नहीं, रोजगारपरक भी बना। मैं वन्यजीव प्रेम, प्रकृति और आस्था का अनूठा संगम स्थल ही नहीं, औषधीय पौधों से भरपूर भी हूं। मेरे अहाते में पहले घना जंगल हुआ करता था, जिससे मैं घना कहलाया पर अब मुझे केवलादेव राष्ट्रीय पक्षी उद्यान के नाम से जाना और पहचाना जाता है।

भू-भाग मेरा निचला जरूर रहा पर मेरे यहां प्रवासी गगनचरों ने ऊंची उड़ान भी खूब भरी है, तभी तो निचला भू-भाग अभिशाप से वरदान बना। अतिवृष्टि या बाढ़

कौतुहल से भरे ये अद्भुत नजारे देश-दुनिया से आने वाले हर किसी को लुभाते हैं, जिनसे मैं शोधजनक ही नहीं, रोजगारपरक भी बना। मैं वन्यजीव प्रेम, प्रकृति और आस्था का अनूठा संगम स्थल ही नहीं, औषधीय पौधों से भरपूर भी हूं। मेरे अहाते में पहले घना जंगल हुआ करता था, जिससे मैं घना कहलाया पर अब मुझे केवलादेव राष्ट्रीय पक्षी उद्यान के नाम से जाना और पहचाना जाता है।

जलभराव की वजह बनी तो मेरा परिसर दलदलयुक्त रहने लगा, जो शनैः-शनैः नभचरों को लुभाने लगा। फिर मुझे राजघराने के अतिथियों के लिए आखेटस्थल बना दिया गया।

रियासतकाल में राजा-महाराजा और अंग्रेज हर दिन मेरे क्षेत्र में ज्यादातर बत्तखों का शिकार करने लगे। इनके अलावा चीतल (हिरण) और जंगली सुअरों का भी शिकार होता रहा। पहले पटाखे फोड़ते और उनकी आवाज से बत्तखें उड़ती तो उन पर निशाना साधते, जो मुझे भी तीर की माफिक चुभते पर कुछ नहीं कर पाने का मलाल अवश्य है। वर्ष 1916 में जब लार्ड चेम्सफोर्ड ने एक ही दिन में 4206 बत्तखों को ढेर किया तो मुझ पर ऐसी कालिख पुती, जो आज भी अमिट है पर वक्त बदलता है तो सब बदल जाता है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ और फिर वही शिकारगाह परिन्दों के लिए सबसे सुरक्षित स्थल बना।

चुनौतियां तो मैंने शुरूआत से खूब झेली हैं, पर कोरोना ने तो मुझे भी ऐसा असहनीय दर्द दिया, जो आज भी कसकता है। करीब 3 माह कैद जैसी सजा ही नहीं भुगती, बल्कि मेरे अपनों में होटल संचालक, गाइड, रिक्शा चालकों की रोजी-रोटी तक छिन गई। उस दौर में ऐसी वीरानी भी छाई कि मुझे देखने और मेरी पीड़ा को महसूस करने वालों की संख्या भी शून्य पर जा सिमटी।

वेट लैण्ड, ग्रास लैण्ड व वुड लैण्ड की प्रचुर उपलब्धता के बीच तमाम चुनौतियों से जूझते हुए मैंने वर्ल्ड हेरिटेज साइट तक का सफर तय किया। वर्ष 1981 में उच्च स्तरीय संरक्षण दर्जा प्राप्त राष्ट्रीय पार्क के रूप में स्थापित हुआ और वर्ष 1985 में मुझे विश्व विरासत स्थल का दर्जा मिला।

मेरे परिसर में पहले नदियों का भरपूर पानी आता। उसमें मछलियां व भोजन भी प्रचुर मात्रा में आता, जिनसे देशी-विदेशी पक्षियों की जठराग्नि शांत होती। पहले तो इतने ज्यादा नभचर आते कि उनकी उड़ान के समय गगन काला-काला नजर आता। हालांकि कुछ वर्षों पहले तो मेरा भी हलक सूखने लगा, पर तब जिम्मेदारों ने हल भी निकाला। चुनौतियां तो मैंने शुरूआत से खूब झेली हैं, पर कोरोना ने तो मुझे भी ऐसा असहनीय दर्द दिया, जो आज भी कसकता है। करीब 3 माह कैद जैसी सजा ही नहीं भुगती, बल्कि मेरे अपनों में होटल संचालक, गाइड, रिक्शा चालकों की रोजी-रोटी तक छिन गई। उस दौर में ऐसी वीरानी भी छाई कि मुझे देखने और मेरी पीड़ा को महसूस करने वालों की संख्या भी शून्य पर जा सिमटी।

मैं केवल पक्षियों के लिए ही नहीं, बल्कि जैव विविधता के लिए भी दुनिया में अनूठा उदाहरण हूं। राजस्थान प्रदेश में पाए जाने वाले पक्षियों, जीवों, तितलियों आदि की कुल प्रजातियों की आधी से ज्यादा प्रजातियां मेरे ही परिसर में बसर करती हैं। प्रदेश में परिन्दों की 510 प्रजातियां हैं, जिनमें से 380 तरह के पक्षी मेरे परिसर में चहचहाते

हैं। 40 तरह के रेंगने वाले जीवों में से 25 से ज्यादा प्रजातियां पाई जाती हैं। तितलियों की 125 में से 80 प्रजातियां हैं। मेढ़क की 14 में से 9 और कछुआ की 10 में से 8 प्रजातियां मेरे भू-भाग पर उपलब्ध हैं। मेरी मिट्टी बलुई नम होने से कदम्ब खूब फल-फूलता है, जिनसे मैं लकदक भी रहा। मेरी सुंदरता के साथ ही चहकते परिंदों को निहारने आई देश-विदेश की हस्तियों का भी उनसे खासा लगाव रहा। मुझे खुशी तो तब हुई जब कुछ मेहमान मेरे आंगन से कई पौधे अपने साथ ले गए। वर्ष 1980 में ब्रिटेन के प्रिंस चार्ल्स, 1982 में तत्कालीन राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी और वर्ष 1984 में देश के बर्ड मैन डॉ. सालिम अली व कैट मैन पीटर जैक्सन ने मेरे परिसर में पौधे रोपे, जो वृक्ष बनकर लहलहा रहे हैं। डॉ. सालिम अली ने मेरे आंगन में चहचहाने वाले पक्षियों पर काफी समय तक शोध किया। कई संस्थाओं ने भी उनकी प्रजातियों पर शोध किए, जिससे मेरी अंतरराष्ट्रीय पहचान बनी।

मैं औषधीय गुणों की ऐसी खान हूं, जहां 200 से अधिक प्रजाति के औषधीय पौधे पाए जाते हैं। इनमें कई तो दुर्लभ किस्म के पौधे हैं। आयुर्वेद चिकित्सक भी मेरी गुणवत्ता से मोहित हैं। मेरे भण्डार में उपलब्ध औषधीय पौधे शारीरिक दुर्बलता को दूर ही नहीं, बल्कि कई बीमारियों का इलाज करने में सक्षम हैं। मेरे परिसर में करीब 350 वर्ष पहले महाराजा सूरजमल ने शिव मंदिर की स्थापना की। मेरा परिसर पहले घना जंगल रहा, जहां आसपास के ग्रामीण पशु चराते। एक पशुपालक की गाय जंगल में केले के एक पेड़ के नीचे नियमित खड़ी होती और उसके थनों से स्वत: ही दूध निकलने लगता। एक दिन किसान ने गाय का पीछा किया तो यह देख वह अचंभित रह गया। जब उसने इसकी जानकारी महाराजा सूरजमल को दी तो उन्होंने केले के पेड़ के नीचे की जगह को खुदवाया, जहां प्राचीन शिवलिंग निकला। खुदाई के बाद भी शिवलिंग को हटाया नहीं जा सका तो वहीं केवलादेव शिव मंदिर का निर्माण कराया। उसके ही नाम पर मेरा नाम केवलादेव राष्ट्रीय पक्षी उद्यान पड़ा। यह मंदिर प्रवेश द्वार से 5 किमी अंदर है और इसे चमत्कारी भी माना जाता है। इसके अलावा घने जंगल के बीच ही सीताराम जी का मंदिर वन्यजीव प्रेम, प्रकृति और आस्था का अनूठा संगम स्थल है। मंदिर में कौतुहल भरा नजारा देखने को तब मिलता है, जब आरती के समय भक्त ही नहीं, जंगल से निकल कर दर्जनों हिरण भी एकत्र होते हैं और आरती के बाद जंगल लौट जाते हैं। जीव सेवा और घायल वन्यजीवों के उपचार से मेरे यहां आस्था, भक्ति और प्रेम की बयार बहती रहती है।

एक दिन किसान ने गाय का पीछा किया तो यह देख वह अचंभित रह गया। जब उसने इसकी जानकारी महाराजा सूरजमल को दी तो उन्होंने केले के पेड़ के नीचे की जगह को खुदवाया, जहां प्राचीन शिवलिंग निकला। खुदाई के बाद भी शिवलिंग को हटाया नहीं जा सका तो वहीं केवलादेव शिव मंदिर का निर्माण कराया। उसके ही नाम पर मेरा नाम केवलादेव राष्ट्रीय पक्षी उद्यान पड़ा।

लावारिस, लाचार व बेसहाराओं का घर

मेरा उद्भव पक्षियों की नगरी व अजेय दुर्ग लोहागढ़ के नाम से विख्यात भरतपुर के गांव बझेरा में हुआ। मेरी उपज एक ऐसे बालक की सोच से हुई, जो उस समय कक्षा 6 में पढ़ता था। हालांकि मुझे जन्म लेने के लिए काफी समय तक इंतजार करना पड़ा। उत्तरप्रदेश के अलीगढ़ जिले के सहरोई गांव में पिता श्री बाबूलाल भारद्वाज एवं माता श्रीमती रामवती देवी के परिवार में जन्मा यह बालक पढ़-लिखकर अपना भविष्य संवारने भरतपुर आया तो फिर यहीं का होकर रह गया और इन्हीं के यहां 29 जून, 2000 को मेरा जन्म हुआ।

मेरी उत्पत्ति के बीज करीब 4 दशक पहले उस समय पड़े, जब इस बालक के गांव सहरोई में एक ग्वाला रहता था, जिसका नाम था चिरंजी। उसका अपना कोई नहीं था। वह गांव वालों की गाय व अन्य पशुओं को चराया करता था और ग्रामीणों से जो कुछ मिलता, उससे ही 80 वर्षीय चिरंजी का जीवन चल रहा था। एक बार ग्वाला चिरंजी इतना बीमार हुआ कि वह चल-फिर नहीं पाता था। उसके कीड़े पड़ गए तो गांव वाले भी उसके पास जाने से कतराने लगे। उसकी हालत देख यह बालक व्यथित हो उठा। सेवा करने के बाद भी उसे बचा नहीं पाने का मलाल इसे आज भी है। बस, यहीं से इसके मन में ऐसा विचार उपजा कि दुनिया में जिनका कोई नहीं है, अब जीवन सिर्फ ऐसे लोगों के लिए ही जीना है।

गांव सहरोई में एक ग्वाला रहता था, जिसका नाम था चिरंजी। एक बार ग्वाला चिरंजी के कीड़े पड़ गए तो गांव वाले भी उसके पास जाने से कतराने लगे। उसकी हालत देख यह बालक व्यथित हो उठा। सेवा करने के बाद भी उसे बचा नहीं पाने का मलाल इसे आज भी है। बस, यहीं से इसके मन में ऐसा विचार उपजा कि दुनिया में जिनका कोई नहीं है, अब जीवन सिर्फ ऐसे लोगों के लिए ही जीना है।

यही वह बालक है, जिसे आज डॉ. ब्रजमोहन भारद्वाज यानि डॉ. बीएम भारद्वाज के नाम से जाना जाता है। मेरे जनक एक ऐसे कर्मवीर हैं, जो कर्तव्यनिष्ठ के साथ कर्मसाधक भी हैं। मेरी जननी हैं डॉ. माधुरी भारद्वाज, जो इनकी सहपाठी भी रही हैं। ऐसे माता-पिता की संतान होकर मैं आज गौरवान्वित हूं। इनकी मेहनत, ईमानदारी और सेवामयी लगन से ही मुझे पहचान मिली। बाल्यावस्था में मुझे उस समय बड़ी टीस हुई, जब मेरी मां ने मुझे खुद का भाई-बहन नहीं देने जैसा कठोर प्रण लिया और देवतुल्य

पिता ने भी उनके इस फैसले में सहज सहमति जता दी, लेकिन आज मुझे यह अहसास हो रहा है कि उनका फैसला न्यायोचित रहा, क्योंकि इसी कारण आज मैं भी मोह-माया के बंधन से मुक्त हूं और खुद को भाग्यशाली मानता हूं।

अपनाघर में मुझे आज बहुत सुकून मिलता है। नन्हें पौधा से वृक्ष बनते-बनते मेरी शाखाएं फूटने लगीं, जो देश के चार दर्जन से अधिक शहरों तक पहुंच गईं। एक शाखा तो नेपाल तक जा पहुंची। इनमें 9 हजार सौ से ज्यादा भाई-बहन, चाचा-चाची, ताऊ-ताई, दादी-दादा, बुआ समान रिश्ते हैं। इनके ऐसे ही आवास भी हैं। ये जब एक साथ बैठकर भोजन प्रसादी ग्रहण करते हैं तो इनके चेहरे पर उभरते तृप्ति के भाव को देख संभवत: खुद प्रभु यानि भगवान भी मुस्करा उठते हैं। इस दर्शन को पाकर मैं भी धन्य-धन्य होता रहता हूं। मेरे जीवन में असहनीय पीड़ा का दौर भी आया, जिसे सुनकर शायद आप भी असहज हो जाएं। यह बताना मजबूरी नहीं, बल्कि मैं जरूरी समझ रहा हूं। मेरी जननी व जनक मात्र 20 गुणा 20 फीट के एक कमरे में रहते थे और इसी साइज की दुकान में क्लिनिक चलाते थे। इसी कमरे में सड़क पर पड़े असहाय, लावारिस, बीमार प्रभुजी को लाकर उनकी सेवा की जाने लगी और मेरी यानि अपनाघर की नींव पड़ी। जब प्रभुजी यानि अपनाघर में रहने वाले आवासियों की संख्या 23 हो गई तो जगह छोटी पड़ने लगी। उस दौर में कोई साथ नहीं था, ना अपना और ना पराया। इन्हीं प्रभुजी के लालन-पालन की खातिर मेरी मां के गहने तक बिक गए तो पिता को चाय तक बेचनी पड़ी। मैं बालक था। मुझे दु:ख तो खूब होता था पर कुछ कर सकूं, इतना सामर्थ्य मुझमें नहीं था।

मेरी जननी व जनक मात्र 20 गुणा 20 फीट के एक कमरे में रहते थे और इसी साइज की दुकान में क्लिनिक चलाते थे। इसी कमरे में सड़क पर पड़े असहाय, लावारिस, बीमार प्रभुजी को लाकर उनकी सेवा की जाने लगी और मेरी यानि अपनाघर की नींव पड़ी। जब अपनाघर में रहने वाले आवासियों की संख्या 23 हो गई तो जगह छोटी पड़ने लगी। उस दौर में कोई साथ नहीं था, ना अपना और ना पराया।

शुक्रिया भगवान! आपने मुझे मेरी मां व मेरे जनक के नाम पर %मां माधुरी बृज वारिस सेवा सदन' जैसा पवित्र नाम दिया, जिसे ही आज अपनाघर आश्रम बोला जाता है। कुछ ऐसा ही अपनाघर हो, ऐसा सपना सबका होता है, लेकिन मैं ऐसे लोगों का सपना हूं, जिनका ना कोई अपना घर है और ना ठिकाना। मेरे आंगन में कभी रात्रि नहीं होती और कभी भी, कोई भी असहाय अपनाघर मानकर मेरे यहां आ सकता है। मेरे साथ ऐसे-ऐसे प्रभुजी रहते हैं, जो मनोरोगी हैं या अपनों की प्रताड़ना या फिर किसी आकस्मिक दुर्घटना से ग्रसित होकर मुझ तक पहुंचे हैं। समाज, जिन्हें लावारिस या फिर बेसहारा मानता है। मैं आज उनका अपना घर और परिवार भी हूं। यह सुनकर मुझे सुखद अनुभूति होती है। मैं आज भी उन सज्जनों को भूला नहीं हूं, जिन्होंने बाल्यकाल में मुझे पौधे की तरह सींचने

भरतपुर के अपनाघर में बीमार प्रभुजी को देखते अपनाघर के संस्थापक डॉ. बीएम भारद्वाज। पास में खड़ी हैं उनकी धर्मपत्नी डॉ. माधुरी भारद्वाज।

में अपने श्रम का पसीना बहाया। मैं किन शब्दों में उनका आभार जताऊं, यह समझ नहीं पा रहा हूं। वह भी वक्त था, जब मैं घुटमन चलने लायक हुआ तो मेरी अंगुली थामने बामुश्किल से कुछ सज्जन तैयार हुए। कहते हैं कि वक्त बदलता है तो सब कुछ बदल जाता है और कुछ ऐसा ही मेरे साथ भी हुआ। मुझे चलते देख जब पहली बार प्रभु यानि भगवान प्रसन्न हुए तो फिर उन्होंने ऐसा हाथ थामा कि सज्जन जुड़ते गए और कारवां बनता गया। इस प्रभु कृपा को व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

वह भी वक्त था, जब मैं घुटमन चलने लायक हुआ तो मेरी अंगुली थामने बामुश्किल से कुछ सज्जन तैयार हुए। कहते हैं कि वक्त बदलता है तो सब कुछ बदल जाता है और कुछ ऐसा ही मेरे साथ भी हुआ। मुझे चलते देख जब पहली बार प्रभु यानि भगवान प्रसन्न हुए तो फिर उन्होंने ऐसा हाथ थामा कि सज्जन जुड़ते गए और कारवां बनता गया। इस प्रभु कृपा को व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

समय और जरूरत के हिसाब से मेरे आंगन का विस्तार होता रहा और आज मैं अपनों के साथ 17 एकड़ के विशालकाय भवन में पल-बढ़ रहा हूं। मेरी नीयत पाक-साफ होने का मुझे गहरा आत्म संतोष है, हालांकि मैं आज भी प्रयासरत हूं कि मेरी नीयत में किसी तरह का आगे भी कोई खोट नहीं आए। मेरी रसोई में भण्डार मात्र 7 दिन का रहता है, लेकिन यह प्रभु की कृपा और मुझे मिला मां अन्नपूर्णा का आशीर्वाद ही है कि ये 7 दिन कभी पूरे नहीं होते। मैं खुश इसलिए भी हूं कि मेरे अपनों को कभी किसी के द्वार पर हाथ फैलाना नहीं पड़ता और सरकारी तंत्र का भी मुंह ताकना नहीं पड़ता। अपनाघर से प्रभु के नाम लिखी जाने वाली चिट्ठी पाकर भगवान विभिन्न मानव स्वरूप में आकर सुई से लेकर मेरी हर बड़ी जरूरत की पूर्ति कर जाते हैं। मेरे आंगन में आने वाले प्रभुजनों के चेहरों पर मुस्कान देखकर मैं परिंदों की मानिंद खूब चहकता हूं।

मेरी खुशी उस समय और बढ़ जाती है, जब मेरे आंगन में रह रहे प्रभुजी को उसका कोई अपना अपने घर ले जाता है। उनके मिलन की खुशी में कई बार मेरी भी आंखें नम हो जाती हैं। अपनों के मिलन की इस खुशी को शब्दों में व्यक्त करना मेरे लिए आसान नहीं है। मुझे उस समय गहरा सदमा सा लगता है, जब मेरा कोई अपना अपनों के ही बीच अंतिम सांस लेता है पर शायद नियति को ऐसा ही मंजूर था, यह सोचकर मैं आत्मसंतोष कर लेता हूं। आत्मसंतुष्टि मुझे इससे भी मिलती है कि ऐसे प्रभुजी को अपनाघर में उसके धर्मानुसार अंतिम विदाई दी जाती है। मेरी खुशकिश्मत है कि मेरे आंगन में प्रभुजियों के लिए उनकी बीमारी के हिसाब से रहने की अलग-अलग व्यवस्था है। ठीक होकर कुछ प्रभुजी भी सेवा कार्य में जुटते हैं। बड़ा सौभाग्य यह भी है कि गर्भवती माताओं की सेवा करने का मौका मुझे मिलता है। ऐसा संभवत: देश में कहीं और किसी के नसीब में नहीं होता। इन माताओं

के गर्भ से पैदा होने वाले बाल-गोपालों की किलकारियां जब मेरे आंगन में गूंजती है तो यह मेरे लिए किसी इबादत से कम नहीं होती। मेरे आंगन में सयानी होती बहनों के मधुर मिलन की शहनाई गूंजती है तो हजारों परिवार कन्यादान करने के लिए दौड़े चले आते हैं। अब तो लोग बड़ी संख्या में बसों में तीर्थयात्रा का बैनर लगाकर यहां साक्षात प्रभु दर्शन कर खुद के जीवन को धन्य महसूस करने लगे हैं।

गर्भवती माताओं की सेवा करने का मौका मुझे मिलता है। ऐसा संभवत: देश में कहीं और किसी के नसीब में नहीं होता। इन माताओं के गर्भ से पैदा होने वाले बाल-गोपालों की किलकारियां जब मेरे आंगन में गूंजती है तो यह मेरे लिए किसी इबादत से कम नहीं होती। मेरे आंगन में सयानी होती बहनों के मधुर मिलन की शहनाई गूंजती है तो हजारों परिवार कन्यादान करने के लिए दौड़े चले आते हैं।

सीमित संसाधनों व कम खर्चे में श्रेष्ठ प्रबंधन के साथ नि:शुल्क बेहतर सेवाएं देने वाला एक अनूठा अपनाघर हूं, ऐसे शब्द जब मेरे कानों में सुनाई पड़ते हैं तो मेरा जन्म लेना मुझे सार्थक सा लगता है। मेरे आंगन में पल-बढ़ रहे छोटे भाई-बहनों में संस्कारों के साथ ही उनकी शिक्षा व चिकित्सा में किसी तरह की कमी नहीं रहे, इसका हर संभव ख्याल रखा जाता है। उन्हें आगे चलकर यह अहसास तक नहीं हो कि दुनिया में कोई उनका अपना होता तो शायद बेहतर अवसर मिलता। भरतपुर में बने मेरे आंगन में नर सेवा-नारायण सेवा के अलावा बीमार जीव-जन्तुओं की सेवा का अहोभाग्य भी मुझे मिलता है, हालांकि फिलहाल मेरी अन्य शाखाओं में मुझे यह सौभाग्य नहीं मिलता।

मैं इसलिए भी उत्साहित हूं कि अब मुझे दुनियाभर में अलग पहचान मिलने का सौभाग्य मिलेगा। इस दिशा में काम शुरू हो चुका है। 406 करोड़ रुपए की लागत से यहां 54 ऐसे होम बनाए जाएंगे, जिनमें प्रभुजियों को उनके क्षेत्र के साथ बोली-भाषा, रहन-सहन के हिसाब से रखा जाएगा और इन्हें खान-पान भी जरूरत और बीमारी के हिसाब से सुलभ होगा। प्रथम चरण में ऐसे करीब 24 होम इसी साल अक्टूबर तक चालू होने की मुझे पूरी आस है। यह काम तीन चरणों में 30 सितम्बर, 2027 तक पूरा करने का लक्ष्य रखा है। इसके लिए 40 एकड़ भूमि अलग से रखी है। यह मेरे संत पुरुष तुल्य अभिभावकों के तप व त्याग का परिणाम है कि देश में सदी के महानायक अमिताभ बच्चन ने मुझे याद किया। उन्होंने मेरे बारे में दुनियाभर को जो बताया, उसे सुन और देखकर मिली दुआओं से अब मेरी जिम्मेदारियां और ज्यादा बढ़ गई हैं, जिनका मुझे अच्छे से भान है। समाज की नजर में बेसहारा, बीमार, असहाय प्रभुजनों की सेवा ही मेरी पूजा व आराधना है। मैं आज भी इस ध्येय वाक्य पर प्रयासरत हूं कि कोई भी आश्रयहीन, असहाय पीड़ित या लावारिस बीमार को सेवा एवं संसाधनों के अभाव में वेदनादायक पीड़ा एवं असामयिक काल का ग्रास बनना नहीं पड़े। मेरी यही करुणामयी प्रार्थना है कि आपको कोई ऐसे प्रभुजन नजर आएं तो अपनाघर को सूचना दे दें। सक्षम हैं तो उसे अपनाघर पहुंचाने में मददगार बनें। कोई भी अपनों को अपने घर से बेघर ना करे और कोई अपना बिछुड़ गया है तो एक बार उसे मेरे आंगन में तलाशने जरूर आएं। मेरे लिए आपकी यह सबसे बड़ी मदद होगी और मैं आभारी रहूंगा। मैं चाहता हूं कि देश के हर शहर में अपनाघर का आंगन हो ताकि समाज की नजर में बेसहारा, लावारिस, असहाय माने जाने वाला कोई भी प्रभुजी खुद को ऐसा नहीं समझे कि मैं अनाथ हूं, क्योंकि उन्हें मेरे नाथ संभालेंगे जरूर। इससे उन्हें भी यह सुखद अनुभूति होगी कि मेरा भी अपनाघर है।

पूज्य पिताजी श्री बाबूलाल गुप्ता जी के चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लेते लेखक और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सोनू खण्डेलवाल।

धर्मपत्नी श्रीमती सोनू खण्डेलवाल के साथ लेखक राजेश खण्डेलवाल।

पुत्र पीयूष व आयुष खण्डेलवाल और धर्मपत्नी श्रीमती सोनू खण्डेलवाल के साथ मन दर्पण पुस्तक के लेखक वरिष्ठ पत्रकार राजेश खण्डेलवाल।

वो भी क्या दिन थे?

मासूमियत मेरा गहना है तो अल्हड़ मस्ती का क्या कहना? आधुनिकता तो अब मेरे परम्परागत खेलों को ही लील गई। जीभर कूदना और फांदना तो मैं लगभग भूल सा गया हूं, जो मेरी स्वाभाविक प्रवृति रही। मां की गोद सूनी देख मेरा भी मन भर आता है पर दूर होता मां का आंचल और छिनता अमृत तो मुझे भी झकझौर देता है। अब तो मेरी चंचलता ही नहीं, मचलना भी किसी को नहीं सुहाता।

मेरी जननी के पेट से (गर्भवती) होते ही मेरी परवाह सबको रहती है। चिंता तो मेरी मां को भी कम नहीं होती, जो हर पल देखभाल में जुटी रहती है। उद्‌भव के समय मैं हष्ट-पुष्ट ही नहीं स्वस्थ भी रहूं, तभी तो पौष्टिकता का भरपूर ख्याल रखा जाता है। मुझे संस्कारवान बनाने का सपना सब संजोते हैं। देव स्वरूपों के दर्शन और पूजा-पाठ कर रामायण जैसे धार्मिक ग्रंथों का श्रवण पान तो मेरी जननी की दिनचर्या के हिस्सा रहे, लेकिन अब ऐसा विरली ही कर पाती है, ज्यादातर तो ऐसा सुनती और देखती हैं, जो वर्जित माना जाता है। ऐसे हालतों में मुझसे श्रवणकुमार बनने की अपेक्षा करना बेमानी सा लगता है। पैदा होते ही मुझे सब दुलारते हैं। हर कोई मुझे गोद में उठाने को आतुर ही नहीं रहता, बल्कि जीभर चूमने को लालायित भी रहते हैं। ऐसा देखकर तो मन ही मन मैं खूब खुश होता हूं। मेरी मुस्कराहट पर तो सब कुछ न्यौछावर होने लगता है तो मेरे बिलखते ही धड़कनें बढ़ने लगती हैं। मुझे चुप कराने को कोई कोर कसर नहीं छोड़ी जाती और चुप होते ही मेरे अपनों को सुकूनभरा अहसास होता है तो मैं भी आरामतलब हो जाता हूं। निद्रा में रोते ही मेरी जननी को बिस्तर गीला होने का आभास हो जाता है तो वह मुझे सूखे में सुलाकर खुद गीले में लेट जाती है। मां के उदारता रूपी ऋण को मैं जीवन पर्यन्त चुका भी नहीं पाता।

ऐसा देखकर तो मन ही मन मैं खूब खुश होता हूं। मेरी मुस्कराहट पर तो सब कुछ न्यौछावर होने लगता है तो मेरे बिलखते ही धड़कनें बढ़ने लगती हैं। मुझे चुप कराने को कोई कोर कसर नहीं छोड़ी जाती और चुप होते ही मेरे अपनों को सुकूनभरा अहसास होता है तो मैं भी आरामतलब हो जाता हूं।

मुझे घुटमन (घुटनों के बल) चलते देख माता जब मंद-मंद मुस्काती है तो मेरे चेहरे पर भी हंसी तैरने लगती है पर बच्चा होने के कारण खुलकर नहीं हंस पाने का मलाल मुझे जीवनभर है। अपने पैरों पर खड़ा होकर मुझे चलने का जतन करते देख मेरे अपने प्रसन्नचित होते हैं। भावविभोर नजर आती मेरी जननी ही नहीं, सब मुझे संभालने को दौड़ते हैं। टकटकी लगाए बैठे सब मुझे गिरने से पहले ही गोद में उठाने को लपक पड़ते हैं। अपनी माटी को चूमते व चखते वक्त टोकाटकी पर मैं मचलता ही नहीं, सुबक भी उठता हूं। संभल-संभलकर चलने ही नहीं लगता, तुतलाकर बोलने भी लगता हूं तो मेरे जनक व जननी खूब दुलारते हैं। दुत्कार तो तब सेहनी पड़ती है, जब मैं उनकी नजरों से ओझल होता हूं। सजल नयनों को देख पुचकार लेने पर तो खुद को खुशनसीब क्यों ना समझूं।

होश संभालते ही घर में गुड्‌डा-गुड्‌डी तो गली-मौहल्लों में गिल्ली-डंडा, कंचे, लुकाछिपी ही नहीं और भी कई तरह के ऐसे खेल खेलना और कूदना-फांदना मेरे शौक रहे हैं, जिनके तो अब मुझे नाम तक याद नहीं। ये मेरे मानसिक और शारीरिक विकास के द्योतक हैं। खेलता मैं अब भी हूं पर अब ऐसे खेल खेलता हूं, जिनमें न तो श्रम है और न ही मानसिक विकास की आस। अब तो मैं उन खेलों का आदि सा हो गया हूं, जो मुझे कुंठित तक बनाते हैं। मैं तो उनमें आकंठ डूबने को ही मस्ती समझता हूं पर भूल तो मेरे अपने करते हैं। मैं तो नासमझ हूं पर मेरे अपने समझदार होकर भी ऐसे अनजान बने रहते हैं, जैसे उन्हें यह ज्ञान ही न हो कि आधुनिक खिलौना (मोबाइल) तो मेरे मन-मस्तिष्क ही नहीं, बल्कि चक्षु विनासक भी है। वार-त्यौहारों पर मेरा उत्साह व उल्लास पहले जैसा नहीं रहा। त्यौहार मनाता तो अब भी हूं पर तन्हा-तन्हा सा। तन्हाई तो तब खलती है, जब अल्हड़ता से भरे माहौल (होली) में भी सूखा-सूखा रहता हूं। पढ़ता-लिखता तो मैं पहले भी था पर अब ऐसा बोझिल हो गया

हूं कि चुहलबाजी और चपलता को तो जैसे समय ही नहीं मिल पाता। यह अखरता मुझे भी है पर मन-मसोस कर रह जाता हूं। नसीब और मन्नतों से मुझे पाते ही सब प्रफुल्लित होने लगते हैं। मेरे अवतरण का कोई समय और दिन तय नहीं होता पर अब तो मैं मुहुर्त से भी आने लगा हूं। मुहुर्त देखने वाला भी क्या करें?, जब जननी ही मुझे खुद के या मेरे जनक के अवतरण दिवस या अन्य विशेष उत्सव व अवसरों पर लाने की जिद पकड़ लेती है। पछतावा तो उसे तब होता है, जब मेरा भाग्य जानने की लालसा में वह कुण्डली लिए दर-दर भटकती है पर कभी विधाता के लेख से कुण्डली का मिलान ही नहीं हो पाता।

मेरे अवतरण का कोई समय और दिन तय नहीं होता पर अब तो मैं मुहुर्त से भी आने लगा हूं। मुहुर्त देखने वाला भी क्या करें?, जब जननी ही मुझे खुद के या मेरे जनक के अवतरण दिवस या अन्य विशेष उत्सव व अवसरों पर लाने की जिद पकड़ लेती है।

लाड़ला होने का गर्व मुझे जन्मजात प्राप्त है पर जब सब लाड़ लड़ाते है तो मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। असहनीय पीड़ा तो तब होती है, जब लाड़ो को गर्भ में मिटाने जैसा कदम उठा माता भी कुमाता बन बैठती है। हम दो हमारे दो की प्रथा के बीच बच्चा एक ही अच्छा जैसी मानसिकता तो मेरे रिश्तों को ही लीलने लगी है। अब बहन-भुआ, मौसी-मामी, चाची-ताई जैसे रिश्ते मुझे नसीब से ही सुलभ हो पाते हैं। मैं लाड़-प्यार में फूला नहीं समाता पर इतना बिगड़ भी जाता हूं कि मुझे अपनों की सीख ही बुरी नहीं लगती, बल्कि बुजुर्गों की बरगद रूपी छाया भी नहीं सुहाती। कीमत भी तब समझ आती, जब मेरा सब कुछ मटियामेट हो चुका होता है। वेदना मुझे तब भी होती है, जब मां के हाथों में नहीं होता, बल्कि मेरा लालन-पालन भी आया ही करती है। मां की ममता और उसके आंचल रूपी छाया को तरसना मेरी बदनसीबी नहीं तो क्या मानूं?

धरा पर अवतरित होने से पहले नौ माह तक जननी मेरी उदरपूर्ति ही नहीं करती, बल्कि मेरी धड़कन भी होती है। श्वांस भी मैं उसी से लेता हूं। अमृतपान कर मैं ही तृप्त नहीं होता, वह भी सौभाग्यशाली समझती है। अपवादस्वरूप मैं कभी-कभी पहले और बाद भी जन्मता हूं। पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंगी और आधुनिकता का चोला ओढ़े अंधी दौड़ दौड़ती कुछ कलियुगी मां तो फिगर की फ्रिक में अलमस्त हो मुझे ही अमृत से वंचित ही नहीं करती, खुद का भी सुकून खो बैठती है। अमृतपान को मोहताज रहा तो मेरा मोह भंग होना लाजमी है। यह उसे क्यूं खलता है?, जो मेरी समझ से परे है पर यह जिक्र करना इसलिए जरूरी समझ रहा हूं कि ऐसी कई माताओं को मैंने छटपटाते ही नहीं, तड़फते भी देखा है। मुझे ही ऊपर वाले (भगवान) का स्वरूप समझा जाता है, क्योंकि माना यह जाता है कि बच्चा कभी झूंठ नहीं बोलता। मैं अगर झूंठ बोलता हूं तो ऐसा सीखता भी घर-परिवार से ही हूं, क्योंकि मां ही मेरी पहली गुरू और घर पाठशाला होती है। पचपन पार होने के बाद भी जब मुझे मेरा बचपन याद आता है तो मन ही मन आनंदित ही नहीं होता, बल्कि यह सोचता रहता हूं कि वो भी क्या दिन थे?

रचती है सृष्टि, झेल रही कुदृष्टि

धरा पर कदम धरने और आगे बढ़ने से उड़ान भरने तक कहीं पीछे नहीं हूं। शालीनता से तकनीक में मेरा कोई सानी नहीं। मान-मर्यादा ही नहीं, संस्कार और संस्कृति से भी ओतप्रोत हूं। आवाज भी मेरी बुलंद है पर फिर भी मुझे बंदिशों की जकड़न में क्यूं जकड़ा जाता है, यह मेरी समझ से परे है। उपहास की पात्र ही नहीं, मुझे भोग की वस्तु समझने की भूलें भी कम नहीं होती। अलसुबह से शाम क्या, देर रात तक चकरघिन्नी रहकर भी क्या करती हो, जैसी तोहमत भी खूब सहती हूं पर मैं हिम्मत और हौंसले रूपी दम से अड़ी और खड़ी हूं तो यह कहना अतिरंजित नहीं होगा।

वेद-पुराणों में भी कहा है, यंत्र नारी पूज्यंते, तत्र रमन्ते देवता अर्थात जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवताओं का वास होता है पर शायद कलियुग में इसे आत्मसात करने को कोई आतुर नहीं दिखता तभी तो मेरी अनदेखी और उपेक्षा दिनों-दिन सुरसा के मुंह की मानिंद बढ़ रही है। कभी मेरा अपहरण होता है तो कभी बलात्कार। कभी दहेज की बलि चढ़ती हूं तो कभी घरेलू हिंसा की शिकार। परायों से तो मुकाबला कर भी लूं, पर जब अपने ही पराए होने लगे तो फिर कहना क्या? तब मौन ही मेरा गहना और जुर्म सिर्फ सहना ही जिंदगी का हिस्सा लगता है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के मुताबिक वर्ष 2020 के दौरान देश में हर रोज 77 महिलाएं दुष्कर्म की शिकार बनी। आंकड़ों के फेर में आपको उलझाना नहीं चाहती मगर यह बताना भी नितांत जरूरी समझती हूं। महिला अपराध के करीब 30 प्रतिशत मामलों में अपनों की तो 23 प्रतिशत में परायों की बुरी नजर मुझ पर पड़ी। 16.8 प्रतिशत में मेरा अपहरण तो 7.5 प्रतिशत में बलात्कार हुआ। घृणा तो तब ज्यादा हुई, जब हवस के भूखे भेड़ियों ने 6 माह की दुधमुंही को नहीं बक्शा तो 60 पार वृद्धा तक को नोंच डाला। बलात्कार के मामलों में अपना राजस्थान देशभर में अव्वल रहा, जहां 5 हजार से ज्यादा केस हुए।

राजधानी दिल्ली का निर्भया मामला हो या फिर अलवर (राजस्थान) में घटित थानागाजी प्रकरण। ये नमूने मात्र तो ऐसे घिनौने कुकृत्य हैं, जिन्हें शायद मैं कभी भुला ही नहीं पाऊंगी। ऐसे न जाने कितने मामले हैं, जो लोकलाज में दफन हैं। ऐसा नहीं, इन मामलों में कार्रवाई नहीं होती। होती है पर तब तक सांप निकल चुका होता है और रह जाती है सिर्फ लकीर, जो दरिंदों के हौंसले बढ़ाती है। कुछ दांव-पेचों की आड़ ले लेते हैं तो कुछ कानूनी गलियों से बच निकलते हैं। मैं सृष्टि निर्माण में नर समान सहभागी हूं और वतन की आधी आबादी भी। संवैधानिक दर्जा बराबरी का पर ऐसी अभागी, जो कुदृष्टि के चलते पूरा हक पाने को आज भी मोहताज हूं। तिरष्कार

के साथ कुलटा, कुलक्षणी, कलंकनी, पापिन, कुल नाशिन जैसा सुनकर भी सह पाना मेरे संस्कारों की ही देन है। उन संस्कारों पर तो टीका-टिप्पणी क्या करूं, जो फिर भी मुझे ही बेशर्म, बेहया और वैश्या तक कहने से बाज नहीं आते। कौन ऐसी अभागन होगी, जो नगरवधु बनना चाहेगी पर कभी अपनों की विवशता तो कभी जोर-जबरदस्ती से इज्जत नीलाम होती है और जब एक बार उस दलदल में उलझ जाती हूं तो ताउम्र उसी में फंसकर रह जाती हूं। पश्चिमी संस्कृति की हवा के झोंके भी कम नहीं आए, जिन्होंने मेरी मान-मर्यादा को तार-तार करने के भरसक जतन किए। लेकिन भारतीय संस्कृति सशक्त ही नहीं, अमिट भी है और रहेगी। हालांकि मैं यह दावा भी नहीं करती कि मेरी अपनी कुछ पश्चिमी बयार में बहकी ही ना हो।

मैं मां की ममता, प्रेम की पुजारिन और भक्ति की शक्ति हूं। दीवानगी ही नहीं, मर्दानगी की प्रतिमूर्ति भी हूं। किसी के लिए मांग का सिंदूर तो किसी के हाथ की सजी कलाई भी हूं। मैं कमजोर न थी और न हूं। हर क्षेत्र में पहले की तरह कंधा से कंधा मिलाकर कदम बढ़ाती हूं।

अनगिनत ऐसे नाम हैं, जिनसे आज भी मुझे गर्वानुभूति कम नहीं होती पर अबला-सबला रूपी हास-परिहास भी बखूबी कचोटता है। जन्मते ही मुझे लक्ष्मी आने जैसी उपमा दी जाती है। फिर गर्भ में मुझे पाकर मेरी जननी निष्ठुर कैसे बन जाती हैं? यह तो खुद मेरी भी समझ से परे हैं। हालांकि माता कभी कुमाता नहीं होती पर वह मुझे मिटाने का पाप (भ्रूण हत्या) संभवतः सांसारिक मर्यादा में अपने सिर ले लेती है और मुंह तक नहीं खोलती।

माता कभी कुमाता नहीं होती पर वह मुझे मिटाने का पाप (भ्रूण हत्या) संभवतः सांसारिक मर्यादा में अपने सिर ले लेती है और मुंह तक नहीं खोलती। बचपन में मुझे लाड़ो या लाड़ली कहकर पुकारा जाता है तो मैं खूब खुश होती हूं। वर्ष में दो बार (नवरात्र में) देवी स्वरूप मानकर जब मेरे चरणों को पूजा जाता है तो फूली नहीं समाती, पर ऐसा सदा नहीं होता, जिसका मलाल भी कम नहीं होता।

बचपन में मुझे लाड़ो या लाड़ली कहकर पुकारा जाता है तो मैं खूब खुश होती हूं। वर्ष में दो बार (नवरात्र में) देवी स्वरूप मानकर जब मेरे चरणों को पूजा जाता है तो फूली नहीं समाती, पर ऐसा सदा नहीं होता, जिसका मलाल भी कम नहीं होता। थोड़ी बड़ी होने के साथ ही मुझसे सबकी अपेक्षा बढ़ने लग जाती है। उम्मीदों पर खरी उतरने के साथ ही प्रतिबंधों का भी दबाव कम नहीं होता तो मैं अपनी इच्छाओं को भुला देना ही भला मान लेती हूं। कई बार तो महत्वाकांक्षाओं को दफना तक देती हूं।

किशोरावस्था की दहलीज पर कदम रखते ही जब मुझ पर गिद्ध नजरें मड़राने लगती हैं तो चहुंओर से ताकते मनचलों के बीच उड़ानभरी चाह की राह पलकें झुकाकर पार करना ही मजबूरी होती है। पराया होने का आभास तो मुझे बहुत पहले (बचपन) से कराया जाता रहा पर मेरा बालमन इसे कभी समझ ही नहीं पाया।

यह मैं तब जान पाई, जब दूसरे की देहरी पर कदम धरा और फिर वही मेरा अपना आशियाना बना। हालांकि कई बार तो अबोध अवस्था में ही मुझे पराई चौखट चूमनी (बाल-विवाह) पड़ी पर इसका भी बोध होने तक बहुत देर हो चुकी होती है। यहां आकर मेरे बहुतेरे नाम रखे गए, जो अर्द्धांगनि (पत्नी) से शुरू होकर मां बनने तक ही नहीं थमे। कभी बहु तो कभी सास का दर्जा मिला। चाची-ताई, बहन-भुआ (बुआ), ननद-भौजाई, दादी-नानी और मामी जैसे नामों की अहमियत भी समझने लगी। मैं कुछ भी बनी पर बेटी होने का तमगा अंतिम सांस तक मेरे साथ लगा रहा।

मां बन अपने लाल का लालन-पालन करने को खुद भूख-प्यास ही नहीं सहती, गीले में रात भी काटती हूं पर उफ्फ तक नहीं करती, जबकि बड़ा होकर वह मुझसे बड़ा होने जैसा व्यवहार करता है तो मेरे नयनों से अश्रुधारा फूट पड़ती है, जैसे बालपन में बिस्तर गीले होते ही उसके आंसू बहते थे। फर्क सिर्फ इतना, तब उसका बिलखना सबको दिखता और सब उसे चुप कराने को दौड़ पड़ते हैं, पर मैं तो अपना दर्द भी बयां नहीं कर सकती। जमाना ऐसा कि मुझसे पीछा छुड़ाने का ताना-बाना बुनता रहता है। फिर भी मैं अर्थी को कंधा तक देने से पीछे नहीं हटती।

दूर होते अपने, दरकते सपने

जीवन की एक अवस्था में हर किसी का मुझसे पाला पड़ता है। नर हो या नारी, मेरे आगोश में आने मात्र से उसका तन और मन दोनों ही क्षीण होने लगते हैं। उस अवस्था तक पहुंचने पर मुझसे कभी कोई बच नहीं सका है, हालांकि कुछ सुव्यवस्थित दिनचर्या के कारण इंतजार कराते हैं तो कुछ मुझे सहज अपना लेते हैं। कुछ तो समय से पहले खुद ही मेरी गिरफ्त में आ जाते हैं। उद्‌भव के साथ ही जब मुझे बुढ्ढ़ा, खुसट् जैसी उपमाएं सुननी पड़ती हैं तो मेरे अपनों के साथ-साथ मुझे भी दु:ख होता है, लेकिन यह तो मेरे दुर्दिनों की शुरूआत मात्र है।

कोई अमीर हो या गरीब, श्वेत तन हो या फिर श्यामल। इससे फर्क नहीं पड़ता। मेरा साथ ही उसकी काया पलटने को पर्याप्त होता है। कभी मेरा अपना अपने ही कइयों का सहारा बना। लेकिन जब उसे सहारे की दरकार हुई तो वह ऐसा बेसहारा बन गया है, जिसकी उसने कभी सपने में कल्पना भी नहीं की होगी। यह देख और जानकर मैं भी बे-इंतहां हताश व निराश होता रहता हूं, पर अब मुझमें इतना सामर्थ्य कहां कि मैं किसी के भरोसे ही ना रहूं।

जीवन में भूख हर किसी को लगती है और लगनी भी चाहिए। उसके पापी पेट की भूख तो मेरे कारण घटने लगती है, पर हलक में रोटी नहीं उतरने जैसी हालत में भी मेरा अपना मोहपाश के ऐसे बंधन में जकड़ा रहता है कि उसकी मोहरूपी निष्ठुर भूख कभी नहीं मिटती, जिसका जरूर मुझे मलाल रहता है। मेरे कई अपने तो माया की चकाचौंध में इतने दूरदृष्टिहीन हो जाते हैं कि खुद ही अपनों को दूर (परदेश) भेज देते हैं। माया रूपी भंवरजाल में उलझे मेरे अपनों को इसका अहसास तब होता है, जब उनके अपने उनसे इतने दूर चले जाते हैं कि फिर लौटकर नहीं आते। ऐसी अवस्था में उनके टूटते सपनों का दर्द मुझे भी होता है, पर मेरे अपने की इस गलती को सुधारू भी तो कैसे? वेदना तब और बढ़ जाती है, जब कई बार तो मेरे अपने के अंतिम दर्शन भी उसके अपने को नसीब नहीं होते। मेरा हाथ पकड़ने से पहले मेरे अपने के चहुंओर मोहमाया का ऐसा भ्रमजाल फैला रहता है, जो कभी किसी को नहीं दिखता, लेकिन मैं ही तो हूं, जिसके कारण मेरा अपना धीरे-धीरे इन्हें महसूस ही नहीं करता, बल्कि पूरी तरह समझने भी लगता है। इस दौर में होने वाली पीड़ा उस समय असहनीय होती है, जब मेरे अपने के अपने ही उससे दूरी बनाने लगते हैं।

मेरा भी मान, सम्मान और स्वाभिमान है, लेकिन समय के साथ मेरा यह भ्रम ही नहीं टूटता, बल्कि मुझे अपमान के ऐसे-ऐसे कड़बे घूंट पीने को विवश होना पड़ता है, जिनके बारे में तो मैं कभी सोच भी नहीं सकता। मेरे अपने के आंगन में मधुर मिलन का संगीत और फिर गूंजती किलकारी सुन मेरा रोम-रोम खिल उठता है और तन-मन भी मयूरी नृत्य करने लगता है, पर मेरा अंतर्मन तब रो उठता है, जब मेरे अपने के अपने उसका सब कुछ छीनने को आतुर नजर आते हैं। इससे भी उन्हें सन्तुष्टि नहीं मिलती तो फिर होता है, मेरे अपनों का बंटवारा। इस

दौर में होने वाली किचकिच से आहत मेरा अपना राहत पाने के जतन की कम जद्दोजहद नहीं करता। मगर नैतिक मूल्यों के पतन की पराकाष्ठा तो तब होती दिखती है, जब वे मेरे अपने को अपने ही घर से बेदखल तक करने से बाज नहीं आते।

अपनी बगिया में खिलते फूलों को देख जब मेरा अपना मंद-मंद मुस्कुराता और अपनी गोद में चलता हुआ खिलखिलाता है तो मुझे भी सुकून का अहसास होता है। लेकिन मैं तब कराह उठता हूं, जब मेरे अपने की बरगद रूपी छाया भी उसके फूलों को नहीं सुहाती। टीस उस समय भी कम नहीं होती, जब फूलों की जुबां से निकले पत्थर रूपी शब्द मेरे कानों में सुनाई पड़ते हैं। डूब मरना तो मेरे लिए तब हो जाता है, जब जीवनसाथी के बिछुड़ने के बाद मेरे अपने के चरित्र तक पर अंगुली उठने लगती हैं, मगर निढ़ाल अवस्था में ऐसा सहने के अलावा मैं कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं होता। सवा सौ करोड़ से अधिक की आबादी वाले देश में मेरे अपनों (बुजुर्गों) की अनुमानित संख्या 20 करोड़ से ज्यादा है। विविधताओं से भरे विभिन्न प्रांतों में हजारों ऐसे आश्रय स्थल (पंजीकृत व अपंजीकृत वृद्धाश्रम) खुले हैं, जिनमें बेसहारा, बेबस और दुत्कारे गए मेरे अपने (बुजुर्ग) रह रहे हैं, जिनकी संख्या लाखों में हैं और दिनों-दिन इसमें बढ़ोतरी हो रही है।

देर-सवेर आप भी मुझसे रू-ब-रू होंगे जरूर। तब आप भी ऐसे ही सुबकने को मजबूर होंगे, जैसे मेरा अपना वृद्ध आश्रमों में रहकर रो तो रहा है पर आंखों के आंसू छिपाकर। मेरे अपनों के ऐसे आश्रमों में पहुंचने के कारण चाहे जो गिनाएं जाते हों, लेकिन इसकी मूल वजह उसके अपनों का संस्कारहीन होना है और संस्कारों के पतन की मूल जड़ एकाकी परिवार प्रथा का बढ़ता चलन है।

अपना दु:खड़ा सुनाकर मैं आपको भी दर्द देना तो नहीं चाहता, लेकिन सुनाना इसलिए जरूरी समझ रहा हूं कि देर-सवेर आप भी मुझसे रू-ब-रू होंगे जरूर। तब आप भी ऐसे ही सुबकने को मजबूर होंगे, जैसे मेरा अपना वृद्ध आश्रमों में रहकर रो तो रहा है पर आंखों के आंसू छिपाकर। मेरे अपनों के ऐसे आश्रमों में पहुंचने के कारण चाहे जो गिनाएं जाते हों, लेकिन इसकी मूल वजह उसके अपनों का संस्कारहीन होना है और संस्कारों के पतन की मूल जड़ एकाकी परिवार प्रथा का बढ़ता चलन है। पाश्चात्य संस्कृति के इस दौर में वह यह तक भूल बैठता है कि एक दिन उसे भी मेरे ही आगोश में आना है। मेरे अपनों की इससे भी ज्यादा दुर्गति तो उसके अपनों के घर में हो रही है, जहां वह ना हंस सकता है और ना ही रो पाता है। किसी को कुछ कहे तो बुढ्ढ़ा सट्या गया है, जैसे शब्द सुनने पड़ते हैं और ना बोले तो बुढ्ढ़े की मति मारी गई है, तक सुनकर सहना पड़ता है। लेकिन करूं भी तो क्या?, इस सबका जनक भी तो मैं ही हूं।

मेरा सिर उस समय शर्मसार हो गया, जब वैश्विक संकटकाल में मेरे अपने ने अंतिम सांस ली। उस दौर में जीवन की डोर टूटी तो रिश्ते-नाते भी तार-तार होते दिखे। सगे-संबंधियों तक ने ही अपने के अंतिम दर्शन करने से दूरी नहीं बनाई, बल्कि मेरे अपने के लाल ने मुखाग्नि तक देकर निहाल नहीं किया। पानी-पानी तो मैं तब हुआ, जब ऐसे हाल में भी मेरे अपने के लाल देवतुल्य माता या पिता की पार्थिव देह से आभूषण तो उतार ले गए। उस दौर में इन नजारों को देख मेरी रूह कांप उठी, पर लाचारी का मारा मैं करता भी तो क्या? किन्हीं भी कारणों से आहत मेरे अपनों (बुजुर्गों) को जिम्मेदारों (सरकारों) की ओर से राहत के दिवास्वप्न तो खूब दिखाए जाते हैं। उनके जीवनयापन के लिए वृद्धावस्था पेंशन तो संरक्षण के लिए कानून भी बने हैं। बावजूद इसके जरूरतमंद मेरे अपने परायों के भरोसे जीवन के अंतिम दिन काटने को मजबूर हैं। इनकी इस बेबसी व लाचारी को देख मैं खुद भी सुबक उठता हूं, लेकिन मेरी कमजोर होती शारीरिक व मानसिक शक्ति के साथ ही सामर्थ्यहीन अवस्था होने के कारण कुछ कर नहीं पाने की पीड़ा मुझे कचोटती रहती है। जीवन का यही शाश्वत सत्य है कि मैं हर किसी का हाथ यूं ही नहीं पकड़ता। इसका भी मकसद होता है, लेकिन उसे बहुत कम समझ पाते हैं, ज्यादातर तो उससे पहले ही अंतिम सांस तोड़ जाते हैं। मैं ही उसकी सद्गति और मुक्ति का मार्ग हूं, लेकिन इस अवस्था में आकर और ना सहने जैसा सहकर भी मेरे अपने की आंखें नहीं खुलती तो फिर आप ही बताएं कि मैं करूं भी तो क्या?

वादे हैं, वादों का क्या?

मुझसे किसका कब पाला पड़ जाए, यह मुझे खुद भी पता नहीं होता पर मैं जिसके साथ होती हूं, वह समाज में बेकार-बेबस और बेरोजगार कहलाया जाता है। यह सुनकर मुझे बहुत मलाल होता है, जब ऐसे में अपने भी पराए होने लगते हैं। पढ़ा लिखा हो या अनपढ़। भाग्यवान हो या फिर धनवान। इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरा हाथ जब ऐसे के साथ होता है तो वह खुद को असहाय सा महसूस करने लगता है, जिसका दु:ख उसके साथ-साथ मुझे भी होता है पर मैं खुद ही सामर्थ्यहीन हूं तो उसकी मदद भी करूं तो कैसे? मुझे कोई देखना नहीं चाहता और मैं भी चाहती हूं कि कोई मुझे देखने की भूल नहीं करें, अन्यथा उसे वह भी भुगतना पड़ सकता है, जिसके बारे में तो मैं सोच भी नहीं सकती। जीवन में कोई भी, कभी भी मुझे ना देखे और ना भुगते तो ऐसा उसके लिए तो बेहतर है ही, मेरे लिए भी यह सुकुनभरा होगा।

मेरा साथ छोड़ना हर कोई चाहता है। इसके लिए वह क्या-क्या जतन नहीं करता। मेरा अपना दर-दर भटकने तक को मजबूर हो जाता है। इसी बेकारी और लाचारी में कई तो भीख तक मांगने लगते हैं। जीवन में भीख मांगना ना उसे पंसद होगा और ना ही मुझे पसंद है पर जब वह इसे नियति समझने की भूल कर बैठता है तो ऐसे में मैं कर भी क्या सकती हूं? यह सब कुछ सुनाना मेरी मजबूरी तो नहीं, लेकिन मैं इसे जरूरी मानती हूं, जो मैं अपनी दर्द-ए-दास्तां को आज खुद ही आपके सामने बयां कर रही हूं, शायद इसे सुन और समझने के बाद आप ही सचेत हो जाएं, लेकिन फिर भी नहीं मानें तो मैं कर भी क्या पाऊंगी?

मेरे दर्द को आप भोर होते ही किसी भी शहर के प्रमुख स्थल या चौराहों पर उस समय महसूस कर सकते हैं, जब मेरा अपना सगा दो जून की रोटी की जुगत में टकटकी लगाए वहां खड़ा रहता है। उम्मीद यही कि कोई तो आएगा, जो उसे काम देकर आज का बंदोबस्त करेगा पर जब आने वाला सीधा निकल जाता है तो मेरा भी दिल दु:खता है, मगर शायद मेरी नियति में ऐसा देखना ही लिखा है।

कोई मेरे की मदद की खातिर आकर रुकता भी है तो मेरे अपने उसे चारों तरफ से ऐसे घेर लेते हैं, जैसे गिद्ध मंडराते हैं। ऐसी हालत में कई बार तो वह झल्लाता हुआ वहां से निकल लेना ही मुनासिब समझ लेता है। पर करूं भी तो क्या? इसका कारण भी तो मैं खुद ही हूं। मुझे उस समय खूब रोना आता है, जब कोई मेरा पेट में जलती भूख रूपी आग बुझाने को अपने साथ लाए कलेवा यानि भोजन को वहीं बैठकर खाने को विवश होता है और उसे मुश्किल से हलक में उतार पाता है। काम नहीं मिलने से निराश व मायूस होकर जब वह चेहरा लटकाए घर लौटता है और बच्चों के चेहरों की फीकी पड़ती चमक को देख होने वाले दर्द को बयां करना तो मेरे भी बूते

से बाहर है। नई आस और ऊहापोह में मेरा अपना इस उम्मीद में करवटें बदलते रात गुजारता है कि नई सुबह की पहली किरण उसके जीवन को नई राह दिखाएगी। मगर यह नई उम्मीद आखिर मेरे अपने की कब पूरी होगी। इसका मुझे भी बेसब्री से इंतजार है और रहेगा भी....।

मैं उस नासूर समान हूं, जिस मर्ज का इलाज के साथ दर्द बढ़ता जाता है। आज मैं ऐसी विकराल समस्या भी हूं, जो बढ़ते मशीनी दौर में सुरसा के मुहं की तरह फैल रही हूं। मुझे जड़ से मिटाने के दावे और वादे तो जिम्मेदार खूब करते रहते हैं पर मेरी पीड़ा उस समय और गहरी हो जाती है, जब मेरे अपनों को दिखाए सपने मुझे भी टूटते नजर आते हैं।

मीडिया रिपोर्ट्स पर नजर डालती हूं तो यह देख मेरा दिल भर आता है कि वीर भूमि राजस्थान में मेरी स्थिति कुछ ज्यादा ही चिंतनीय है। यहां का हर दूसरा ग्रेजुएट मेरी गिरफ्त में है, जिनकी संख्या 20.67 लाख है। हालांकि मेरे ही कारण से बेरोजगारों की यहां कुल संख्या 65 लाख है, जो देश के सबसे अधिक आबादी वाले राज्यों की तुलना में भी डेढ़ से 3 गुणा ज्यादा है।

मैं उस नासूर समान हूं, जिस मर्ज का इलाज के साथ दर्द बढ़ता जाता है। आज मैं ऐसी विकराल समस्या भी हूं, जो बढ़ते मशीनी दौर में सुरसा के मुहं की तरह फैल रही हूं। मुझे जड़ से मिटाने के दावे और वादे तो जिम्मेदार खूब करते रहते हैं पर मेरी पीड़ा उस समय और गहरी हो जाती है, जब मेरे अपनों को दिखाए सपने मुझे भी टूटते नजर आते हैं।

पिछले 4 साल में यहां मेरी तरक्की चौगुणी हुई है। देश की राजधानी दिल्ली में भी मेरी उन्नति 3 गुणा से ज्यादा हुई है। देश की हर पांचवीं शहरी महिला मेरी चपेट में है, जो ग्रामीण महिला से दो गुणी है। हालांकि शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में मेरे शिकंजे में फंसे पुरुषों की संख्या लगभग बराबर सी है। अपनी तरक्की को देखकर लोगों को जितनी खुशी होती है, इसके उलट मुझे मेरी प्रगति देख उतना ही दु:ख होता है। मगर मेरे इस दर्द को कोई समझेगा तो आखिर कब?

मेरे नेत्र यह भी सुनकर सजल हो उठते हैं कि युवा राष्ट्र कहे जाने वाले मेरे देश में सवा 4 करोड़ लोग मेरे ही कारण बेकारी व लाचारी की मार झेल रहे हैं। इनमें 3 करोड़ से अधिक ऐसे युवा शामिल है, जिनकी उम्र 29 वर्ष से कम है। इनमें भी 1.18 करोड़ युवा ग्रेजुएट हैं। मुझे यह जानकर भी खूब अफसोस हो रहा है कि करीब सवा करोड़ मेरे अपनों ने थक हारकर अब कामकाज की तलाश की आस ही छोड़ दी है। यह जानकर और सुनकर तो मेरे चक्षुओं से अश्रुधारा बह निकली कि गत 3 साल में मेरे ही कारण 25 हजार से अधिक मेरे अपनों ने काल को गले लगा लिया। देश में अमरबेल की मानिंद मेरे बढ़ने के कई कारण भी है, इनमें मेरे अपने युवाओं को समय से काम नहीं मिलना है। कम पढ़ा-लिखा तो फिर भी छोटा-मोटा काम करके मुझसे दूरी बना लेता है, जिससे मुझे संतुष्टि तो नहीं होती पर थोड़ा सुकून जरूर मिलता है, लेकिन शिक्षित होने के बाद मेरा अपना योग्यता के अनुरूप काम की तलाश करता रहता है और धीरे-धीरे मेरे भंवरजाल में फंसकर नाकारा तक बन बैठता है।

असंतुलित अर्थव्यवस्था भी मुझे फल-फूलने का भरपूर अवसर प्रदान करती है। निर्माण, पर्यटन, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में काम की कम रफ्तार भी मुझे बढ़ाने में कारगर भूमिका निभाती है, जिसका दर्द मुझे अंदर तक सालता रहता है पर मैं बेबस होकर पीड़ा सहती रहती हूं। ऐसा भी नहीं है कि मुझसे मुक्ति मिल ही नहीं सकती। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो अपनी युक्ति से मुझसे मुक्ति पा जाते हैं पर ऐसा हर किसी के नसीब में नहीं होता। कुछ अपने बुलंद इरादों और हौंसलों से इतने मजबूत होते हैं कि मुझे साथ छोडने को मजबूर कर देते हैं तो कई खुद ही मजबूर बने रहते हैं। अब आप ही बताओ कि मैं कुछ करूं भी तो क्या?

विशेषज्ञों का भी कहना है कि दृढ़ इच्छा शक्ति से जिम्मेदार (सरकारें) कुछ हद तक मेरे मर्ज के दर्द को कम कर सकते हैं। इसके लिए मनरेगा जैसी योजनाओं को चालू रखने के साथ ही उनका बजट बढ़ाना, खाद-बीज पर सब्सिड़ी बढ़ाकर कृषि क्षेत्र को बढ़ावा देना और शहरी गरीबों को काम देकर उनकी आमदनी बढ़ाना जैसे कारगर कदम उठाए जा सकते हैं।

घना में उड़ान भरता परिंदा

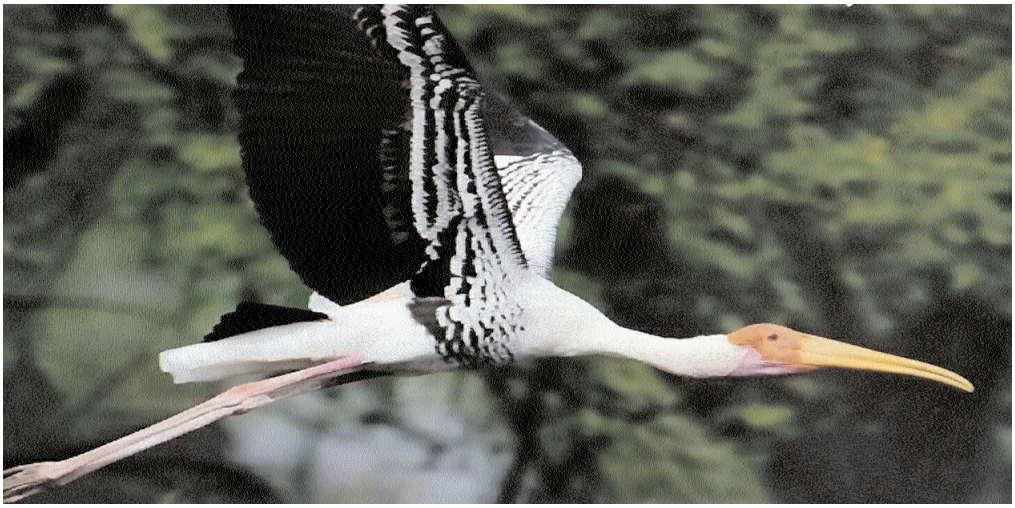

भरतपुर की सुजानगंगा नहर

डीग के जलमहल

अरमानों पर बिजली, उम्मीदें पानी-पानी

कर्म और धर्म के बीच फंसा मैं कराहता ही नहीं, ऐसा दर्द भी झेलता हूं कि मेरे मर्म को कोई समझना ही नहीं चाहता। देश के महान सपूत ने मुझे जय जवान, जय किसान यूं ही नहीं कहा। मेरी फिक्र का जिक्र तो खूब होता है पर मौसम के संग वक्त की मार भी मैं कम नहीं सहता। पकी फसल पर कुदरती कहर मेरे अरमानों पर बिजली ही नहीं गिराती, उम्मीदें भी पानी-पानी हो जाती हैं। खेत-खलिहानों में तितर-बितर बिखरे दानों को देखकर तो मेरे सजल नेत्रों से आंसुओं का सैलाब बहने लगता है। मुझसे ही मेरा देश (भारत) कृषि प्रधान कहलाता है पर मुझे कुछ प्रदान करना शायद जिम्मेदारों को रास नहीं आता।

उपेक्षा और अनदेखी मेरे लिए नए नहीं, वर्षों से इनका दंश झेलता रहा हूं। कृषि को उद्योग तो कहते हैं पर मेरे लिए यह छलावा से ज्यादा कुछ नहीं, तभी तो मैं सिर्फ उत्पादक होने तक सिमटा हूं। प्रोसेसिंग व मार्केटिंग से तो मुझे अछूता ही रखा जाता है। मेरे ही देश में हर वस्तु का उत्पादक उसकी मार्केटिंग के साथ मूल्य भी खुद तय करता है, पर मैं ऐसा नहीं कर पाता, जिसे अपनी नियति नहीं तो मैं क्या समझूं? अच्छी गुणवत्ता के साथ उत्पादन बढ़ाऊं तो भाव आसमान से तारे की मानिंद टूट जाते हैं। उत्पाद की खुली बिक्री, सही तौल और तुरंत भुगतान ना होना अभिशाप से कम नहीं है। मंडियां तो माफियाओं की होकर रह गई लगती हैं। लोन और सब्सिड़ी जैसे सब्जबाग दिखाने का मकसद मुझे उत्पादन जैसे चंगुल में ही फंसाकर रखना होता है। मेरे लिए कई आयोग बने। उनकी रिर्पोटें भी आई पर हुआ क्या? यह किसी से छिपा नहीं है। मजदूरी के साथ खेत का किराया दिलाने जैसे दस्तावेज फाइलों में दफन होकर धूल फांक रहे हैं। गर नए कानून भले होते तो मेरे अपनों को वह नहीं करना पड़ता, जो करने को मजबूर होना पड़ा।

नीति के साथ नीयत में खोट की चोट ने तो मुझे तब झकझोर सा डाला, जब मुझे बड़े घरानों का गुलाम बनाने जैसी कुटिल चालें चली गईं। हमारे बीच विवाद जैसा घटित होने पर तो मुझे न्याय के द्वार तक पहुंचने से रोकने के इंतजाम भी हुए। मेरी शालीनता और धैर्य का नजारा हाल ही में आपने भी बखूबी देखा होगा। मेरे स्मृतिपटल पर वह इस कदर अंकित है, जिसे मिटाया ही नहीं, भुला पाना भी नामुमकिन है। वादे ही नहीं उस दौर में ऐसे दमदार दावे भी किए, जिन्हें सुनकर तो एकबारगी मुझे भी लगा कि शायद अब मेरा कायाकल्प होगा पर मेरा यह भ्रम तब टूटा, जब जिम्मेदारों ने अपने कदम खींच लिए। शुरूआत से ही मेरे अपने उन्हें खोखला ही नहीं, काला भी बता रहे थे, लेकिन जिम्मेदार ऐसा मानने को कतई तैयार नहीं थे। पोल तो तब खुली, जब मेरे अपने अपनी बात पर अड़े और सालभर तक डटे भी रहे। हालांकि तब मेरे अपनों को खूब पीड़ा ही नहीं हुई, बल्कि ऐसे-ऐसे लांछन तक झेलने पड़े, जिन्हें सुनकर तो मेरा सिर भी शर्म से झुके बिना नहीं रह सका। मेरी वेदना तो

तब असहनीय होती रही, जब उनको सुनकर भी अनसुना किया जाता रहा। इस बीच, मेरे लिए वह पल सुकूनभरा ही नहीं, बल्कि गौरवान्वित करने वाला था, जब उन्हें भी झुकना पड़ा, जो पहले कभी झुके ही नहीं थे।

ऐसा नहीं कि मैं पहली बार सुर्खियों में छाया, पहले भी गाहे-बगाहे चर्चा में आता रहा हूं। कभी गन्ना तो कभी कर्जा माफी (ऋण मुक्ति) को लेकर मुझे उछाला जाता रहा है। सपना तो मुझे दोगुनी आय के साथ ही एमएसपी (न्यूनतम समर्थन मूल्य) का भी कम नहीं दिखाया, पर वह आज भी मेरे लिए सपना ही तो है। मेरी उम्मीदें धराशाही ही नहीं, चकनाचूर होती तब नजर आती हैं, जब पहले की तरह ही बिचौलिए (दलाल) मलाई खाते रहते हैं और मैं ऐसा देख-देखकर हाथ मलता रहता हूं। नीति-निर्माताओं (नेताओं) के लिए मैं महज वोट रूपी उपज हूं। मुझे वादा और दावा रूपी खाद-बीज भी खूब मिलता है पर झूठ-फरेब का पानी ऐसा फिरता है कि मैं चाहकर भी लहलहा नहीं पाता। असल में जरूरत पड़ने पर तो मैं खाद-बीज तक को तरसता हूं। बिजली तो मुझ पर तब गिरती है, जब वक्त पर पानी नहीं मिलता और उसके लिए प्रकृति ही मेरा आसरा व सहारा होती है। पानी-पानी में तब भी कम नहीं होता, जब आंख-मिचौली के बीच गुल हुई बिजली के आने का रातभर इंतजार ही करता रहता हूं।

सर्दी हो या गर्मी। इससे मुझे कोई फर्क नहीं पकड़ा। बारिश भी मेरी राह में रोड़ा नहीं बन पाती है। हालांकि मौसम की मार से मैं बच भी नहीं पाता हूं। कभी पाला भरी गलन तो कभी गर्मी की तपन मेरी बर्बादी का सबब बनती है। कभी तेज हवाएं लहलहाती फसल को लिटा देती हैं तो कभी जलमग्न हो जाती हैं। फिर भी मैं अपनी लगन में मगन होकर अपने कर्मपथ पर अड़िग रहता हूं। कई बार कीट-पतंगे उपज को चटकर मुझे खून के आंसू रुलाते हैं। स्वच्छंद विचरते जानवरों से उपज बचाने की खातिर तो कई-कई रात सो नहीं पाता। रैन काटते नैन कई बार लग भी जाते हैं तो मेरे पास चौपट फसल को देख आंसू बहाने के अलावा कोई चारा नहीं होता।

बिजली तो मुझ पर तब गिरती है, जब वक्त पर पानी नहीं मिलता और उसके लिए प्रकृति ही मेरा आसरा व सहारा होती है। पानी-पानी में तब भी कम नहीं होता, जब आंख-मिचौली के बीच गुल हुई बिजली के आने का रातभर इंतजार ही करता रहता हूं।

पौराणिक पद्धति को भूल उपज बढ़ाने के जतन में मेरे अपने रसायनिक उर्वरकों का उपयोग करने में मगन होने लगे तो पतन की इस राह को देख मेरा अन्तर्मन भी दुःखी रहने लगा पर फिर से जैविक उर्वरकों का बढ़ता चलन अब मुझे राहतभरा जरूर लगता है। परिवर्तन ही विकास का द्योतक है, जिससे मैं भी अछूता नहीं रहा। समय के साथ मेरे अपनों में बदलाव दिखा तो मुझे गर्व महसूस हुआ। पहले हल और बैल ही मेरे परम्परागत साथी रहे पर अब अत्याधुनिक मशीनें मेरी मित्र हैं। इनकी मदद से कुछ प्रगतिशील बने तो कुछ को विज्ञान ने वैज्ञानिक बना दिया। कुछ देशी जुगाड़ की जुगत से अन्वेषी हो गए, जिन पर आज मुझे भी नाज है। खेती-बाड़ी ही मेरी आजीविका है और यही मेरा कर्म व धर्म भी। अन्न पैदा करने के अलावा फल-फूल और सब्जी भी मैं उपजाता हूं, पर मेरी राह में अड़चन रूपी ऐसे-ऐसे बीज बोए जाते हैं कि उनसे उपजी खरपतवार रूपी परेशानी कभी मेरा पीछा ही नहीं छोड़ती। उपज का लागत मूल्य नहीं मिलना मेरे लिए टोटे में खोटे समान है, पर फिर भी मैं कर्तव्य विमुख नहीं होता। शायद इसी अवधारणा के चलते मुझे अन्नदाता जैसी उपमा से नवाजा है, जिस पर मुझे गर्वानुभूति होती है।

मैं ऐसा दरिद्रनारायण हूं कि कंगाली और भुखमरी जैसे शब्द मुझे आभूषण समान लगने लगे हैं, जिन्हें धारण करते-करते तो मैं गरीबी के गम को भूल सा गया हूं। मेरे नाम भी कम नहीं हैं। कोई मुझे कृषक तो कोई खेतीहर कहकर पुकारता है। कोई काश्तकार तो कोई धरती का लाल बताता है। हलधर और भूमिपुत्र जैसे नामों से भी मैं जाना जाता है। मेरा हर दिन, हर वक्त और हर मौसम खेत-खलिहान में ही बीतता है। यह कहूं कि पलता और बढ़ता भी वहीं हूं, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। उद्भव के साथ ही मुझे मां समान माटी से गहरा लगाव रहा है। मेरा बचपन ही नहीं, जवानी भी खेत की मिट्टी में खेलते-कूदते कब हाथों से फिसल जाती है, इसका तो खुद मुझे भी पता नहीं चल पाता। उम्रदराज होकर भी मैं उस मिट्टी से खुद को अलग नहीं कर पाता और फिर उसी माटी में चिरनिद्रा सो जाता हूं।

मैं सैनिक हूं...!

चुकाता दूध का फर्ज और माटी का कर्ज

जोश, जुनून और जज्बे से लबरेज। मेरे हौंसले का मुकाबला नहीं तो हिम्मत का कोई सानी नहीं। अनुशासन प्रिय ही नहीं, निष्ठावान भी हूं। कर्मपथ पर अड़िग रहता हूं तो बड़े से बड़ा संकट भी मेरे कदमों को थाम नहीं पाता। मैं कभी पीठ नहीं दिखाता, बल्कि वतन में अमन के लिए हर जतन करता रहता हूं। सेवादार ऐसा, जिसके शौर्य व वीरता की गाथाएं ही नहीं गाई जाती, विविध पदकों से नवाजा भी जाता है। कभी-कभी तो मरणोपरांत भी ऐसे सम्मान मिलते हैं, जो मेरा मान बढ़ा देते हैं। यह मेरा संकल्प ही नहीं, दृढ़ विश्वास भी है कि मेरे रहते तिरंगा न कभी झुका है और न झुकेगा। देश की एकता व अखण्डता की खातिर मैं मर-मिटने से भी नहीं चूकता।

मैं ऐसा निगहबान हूं, जो चाक-चौबंद ही नहीं रहता, बल्कि नजरें भी चौकस रखता हूं। दुश्मनों के लिए आंखों की किरकिरी बनता हूं, जिसका मुझे मलाल नहीं पर अपनों की गद्दारी का गम भी मुझे कम नहीं। सुख शांति के लिए खुद की नींद आंखों में काटने से परहेज नहीं करता। घात-प्रतिघात के बीच अपनों के खोने का गम सहता रहता हूं पर जब मेरे लहू का कतरा-कतरा देश पर न्यौछावर होता है, तब दूध का फर्ज और माटी का कर्ज चुकाने की गर्वानुभूति ही नहीं होती, बल्कि शहीद का दर्जा भी पा जाता हूं।

बलिदानी तो मेरे अपने पहले भी होते रहे हैं, पर तब बहुत कम जान और समझ पाते थे। इसे नसीब नहीं तो और क्या कहूं? तब शहीद की पार्थिव देह भी मेरे अपनों तक नहीं पहुंच पाती थी। सौभाग्यशाली तो मैं तब बना, जब करगिल के दौरान पार्थिव देह मेरे घर ही नहीं पहुंची, बल्कि मेरे अपनों के साथ अन्य भी उसके अंतिम दर्शन करने लगे। देश की आन-बान और शान के प्रतीक तिरंगे में लिपटकर तो मैं धन्य-धन्य ही नहीं हुआ, बल्कि अजर-अमर तक हो गया। उमड़ते जन-सैलाब के जयघोषों से सजल नयनों ने अंतिम विदाई दी तो मेरा परलोक भी संवर सा गया। मेरे मिट्टी में मिलने से आहत मेरे अपनों को राहत दिलाने के जतन भी खूब होते हैं। उनके जीवन यापन के लिए आर्थिक मदद के साथ ही जमीन, पेट्रोल पम्प, नौकरी आदि तक के बंदोबस्त होते हैं पर गम तब कम भी नहीं होता जब कुछ गमजदा मेरे अपने हक के लिए दर-दर की ठोकरें ही नहीं खाते, बल्कि ऐसे फरियादी बने फिरते हैं, जैसे भीख मांग रहे हों।

ऐसे दुखियारों की संख्या भी कम नहीं है, जिनमें कोई आर्थिक मदद पाने तो कोई जमीन या पेट्रोल पम्प पाने की बाट जोह रहे हैं। कहीं वीरांगना तो कहीं भाई नियुक्ति को मोहताज है। मेरे अपनों के हक की धूल फांकती फाइलों को देख मलाल तो खूब होता है पर अब लहू नहीं, सिर्फ आंसू ही बहा सकता हूं। जमाव बिंदु से नीचे भी मैंने कभी रक्तप्रवाह को थमने और जमने नहीं दिया पर उनको क्या कहूं, जिनकी धमनियों में तो लहू बहता है पर

संभवत: संवदेनारूपी लहू जम गया है, जो मेरे अंतिम सफर में आंसू बहाने के साथ सांत्वना देने का श्रेय लेने में अग्रणी रहे। उन आंसूओं को घड़ियाली नहीं तो और क्या कहूं? मौसम और परिस्थितियां चाहें जितनी प्रतिकूल रहें पर मैं कभी कर्तव्यपथ पर न हिला और न डुला। हर हाल में अड़िग खड़ा ही नहीं रहा, बल्कि अड़ा और डटा भी रहा। उस दौर में तमाम मुश्किलों का डटकर मुकाबला ही नहीं किया, बल्कि चेहरे पर सिकन तक नहीं आने दी।

अनुशासनहीनता भी मेरा अनुशासन भंग नहीं कर पाई, जिस पर मुझे फख्र है। प्राणवायु का टोटा जैसा भी मेरा कुछ खोटा नहीं कर पाता। तभी तो हाड़ गला देने वाले सियाचीन जैसे दुर्गम स्थल पर भी मैं जवान ही रहता हूं। जीवन में हर किसी का कोई ना कोई ध्येय होता है। मेरे बालमन ने भी देश सेवा का सपना देखा। किशोरावस्था आते-आते सतत जज्बा बढ़ने लगा और मैं उसे पूरा करने का ताना-बाना बुनता रहा। युवावस्था में उसे साकार करने के लिए क्या-क्या जतन नहीं किए। अलसुबह उठ कर दौड़ लगाई तो मन लगाकर पढ़ाई भी की। अपनों की उम्मीदों पर खरा उतरा तो खुद के सपने को साकार होते देख मेरा भी सीना छप्पन इंची होने से नहीं रह सका।

मैं अनुशासित हूं तो सजग प्रहरी भी। सीमाओं पर तैनात रहकर रक्षा ही नहीं करता, बल्कि दुश्मनों से डटकर मुकाबला भी करता हूं। आक्रांताओं के दांत खट्टे ही नहीं करता, उनके छक्के भी छुड़ा देता हूं। विकट हालत में भी कदम पीछे नहीं हटाता। वतन के लिए प्राणों की आहुति तक दे देता हूं। ऐसे ही कारणों से मुझे वतन का रक्षक कहा जाता है। सीमा पर तैनात रहकर फौजी कहलाता हूं। युद्ध जैसे हालातों में जंगी तो सशस्त्र दलबल के साथ चलकर लाव-ए-लश्कर कहलाता हूं।

सेवाकाल के दौरान ही नहीं, उसके उपरांत भी मुझे कैंटीन जैसी सुविधा से कम कीमत पर गुणवत्तापूर्ण सामान मिलता है। मेरे अपनों के लिए सैनिक स्कूल और अस्पताल जैसी सहुलियतें प्रदत्त हैं, जो मुझे सुकुनभरा अहसास कराती हैं। डयूटी से कई बार छुट्टी नहीं मिल पाने से किसी अपने के मातम में सिरकत नहीं कर पाने का गम असहनीय हो जाता है। ऐसे हालत में मेरे कई साथी खुदकुशी करने जैसा कदम उठा लेते हैं तो उस वेदना को व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। दिल पर चोट तो तब लगती है, जब मैं तो सीमा पर मुस्तैद रहता हूं और पीछे से माफिया मेरे खेत-खलिहान या फिर घर तक कब्जा लेते हैं। दु:ख तब कम भी नहीं होता, जब स्थानीय तंत्र अनजान बना मौन साधे बैठा रहता है। सेवापरांत वन नेशन, वन पेंशन मेरा स्वाभिमान बढ़ाती है तो अन्य सरकारी सेवाओं में आरक्षित लाभ मेरा मान रखता है।

मेरा मस्तक तो ऊंचा तब हुआ, जब रुढ़िवादी परम्परा को तोड़ वीरांगना ने अर्थी को कंधा देकर नई सोच का आगाज किया। देशरक्षा रूपी मेरी सेवा को अब तो मेरी बहनें भी अपना रही हैं और कंधे से कंधा मिला कर कदम बढ़ा रही हैं, तो मेरा उत्साहित होना लाजमी है। अपनों की याद तो मुझे भी खूब सताती है। पहले पाती भेजकर जवाब का इंतजार ही विकल्प होता था। हालांकि मेरी इस पीड़ा को अब तकनीक ने हर लिया है। मेरी जान हर वक्त हथेली पर होती है पर इसकी मुझे कोई परवाह नहीं। देश सेवा ही मेरा धर्म-कर्म है और वार-त्यौहार व इबादत भी।

कलयुग का शिष्टाचार

चहुंओर आज मेरा ही राज है। यह मुझे खैरात में नहीं मिला। खूब पापड़ बैले हैं मैंने। अपने साम्राज्य की खातिर ही मैं झुका हूं, कई बार तो नतमस्तक भी हुआ हूं। शिष्टाचार इतना कि हर कदम पर सबको खड़ा मिलता हूं। ईमानदारी ऐसी कि मैं किसी के साथ छलावा नहीं करता। मेरा साथ पाते ही हर काम रफ्तार ही नहीं पकड़ता, बल्कि पूरा भी हो ही जाता है। कई बार तो मुझे देख खुद ईमानदारी भी शरमाने लगती है।

मैं सर्वत्र व्याप्त हूं। कोई क्षेत्र मुझसे अछूता ना बचा है। चाहे वह सरकारी हो या प्राइवेट। किसी संस्थान में प्रवेश का मामला हो या फिर नियुक्ति का। मेरे शुभचिंतक ऐसे-ऐसे उपक्रम खोज लेते हैं, जिनके बारे में तो खुद मैं भी अनभिज्ञ रहता हूं। बैंक घोटाला हो या चारा घपला। स्पेक्ट्रम मामला हो या व्यापमं प्रकरण। मेरे स्मृति पटल पर ये आज भी अंकित हैं। आपके जहन में भी होंगे कि किस तरह मेरे हाथ कोयले की दलाली में काले हुए। हथियारों की खरीद ने तो मुझ पर कालिख ही पोत दी। मेरी जासूसी (पैगेसस मामला) भी कम नहीं हुई, लेकिन हुआ क्या? यह किसी से छिपा नहीं है। ये तो चंद नमूने हैं, इनकी फेहरिस्त लम्बी और इतिहास पुराना है, जिसे मैं सीने में दफन किए बैठा हूं पर एबीजी शिपयार्ड जैसे कारनामे से तो मेरा सीना भी छलनी सा हो गया।

यूं तो गांव से लेकर शहरी पंचायत में आए दिन मैं चर्चा में रहता हूं, लेकिन पिछले कुछ माह से राज्य और राष्ट्र की पंचायत तक की सुर्खियों में छाया हूं। एनटीपीसी भर्ती का मामला हो या फिर रीट की चीट से निकलती हीट में झुलसे राजस्थान का। इन सबका जनक ही तो हूं। ताने सुनते-सुनते कई बार तो खुद मुझे झुंझलाहट होने लगती है और मैं खुद से नजरें बचाने की कुचेष्टा करता रहता हूं, पर मेरे चहेतों की चमड़ी इतनी मोटी हो चुकी है कि उन्हें कुछ फर्क नहीं पड़ता। शर्म तो मुझे तब भी आती है, जब भरी पंचायतों में मुझे खूब कोसा ही नहीं जाता, बल्कि जमकर लताड़ा भी जाता है और मेरी लिप्तता के साक्ष्य तक जगजाहिर होते हैं, लेकिन मेरे ताकतवर होने का इससे बड़ा साक्ष्य क्या होगा कि जिम्मेदार उसे स्वीकारना तो दूर उस पर चिंतन-मनन तक करने को तैयार नहीं दिखते। बेशर्मी की हद तो तब पार हो जाती है, जब उन्हें कानून के डंडे का डर भी नहीं सताता।

ऐसा नहीं है कि मैं कभी पकड़ा ही नहीं जाता पर जब पकड़ने वाला भी मेरी राह पकड़ लेता है तो फिर बताओ, मैं मेरी तरक्की पर खुश होऊं तो क्यूं नहीं? किसी को फलते-फूलते आज कौन देखना चाहता है? तो फिर आप ही बताओ किसी को मैं कैसे सुहा सकता हूं, तभी तो मेरी चुगली होती है और मेरा अपना शिकंजे में फंसता है। फिर चलते है ऐसे-ऐसे कानूनी दांव-पेच, जिनका जिक्र तक करना खुद मुझे बुरा लग रहा है। मैं अब इतना निष्ठुर हो चुका हूं कि मेरा काम सिर्फ पैसे से नहीं चलता, अब मैं अस्मत तक मांग लेता हूं। तभी तो चपरासी से लेकर अफसर तक का तबादला आसान करा देता हूं। कोई अफसर हो या फिर राजनेता। आज सब मेरे पथ से

गुजरते हैं। इनमें कुछ ईमानदार भी होते हैं तो ज्यादातर मेरी संगत की रंगत पाकर मेरे ही रंग में रंगे नजर आते हैं। मैं दावा तो नहीं करता पर इतना वादा अवश्य करता हूं कि मेरे बिना फाइल मुश्किल से ही सरकती है पर मेरा वजन पाते ही वह सरपट दौड़ने लगती है। मुझे जड़ से मिटाने के वादे और दावे तो खूब किए जाते हैं। जतन भी कम नहीं होते पर जब नीयत बिगड़ने के संग नैतिक पतन बढ़ा तो मैं अमरबेल की मानिंद बढ़ता ही चला गया। आज मैं ऐसी लाइलाज बीमारी बन चुका हूं, जिसका इलाज के साथ मर्ज बढ़ने लगता है। मैं अब समाज के लिए नासूर हूं, यह कहना भी अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा। लोभी-लालची और स्वार्थी लोगों के रोम-रोम में ऐसा रच-बस गया हूं कि उनका मुझसे दूर होना मुश्किल के साथ नामुमकिन सा लगता है।

प्यार और घृणा की बात तो अब मेरे लिए बेमानी सी है। वक्त का पहिया कभी नहीं थमता। उसके घूमते ही मेरे अपने भी पराए बन जाते हैं तो जी-भरकर कोसने वाले मुझे चाहने लगते हैं। बिडम्बना भी ऐसी कि मुझसे दूरी बनाए रखने वाले दु:खी ही नहीं रहते, बल्कि कुंठित तक हो जाते हैं। वे भी मन ही मन मुझे चाहने लगते हैं और शनै: शनै: मुझमें आकंठ डूब जाते हैं। भौतिकवाद के इस दौर में मेरा सहारा लेकर लोग ऐशो-आराम ही नहीं करते, बल्कि मालामाल तक हो जाते हैं। अफसोस तो मुझे तब होता है, जब पकड़े जाने पर वे ही मुझे जगत में बदनाम कराते हैं, लेकिन इनमें भी कुछ ऐसे पारंगत होते हैं, जो फिर सेंटिंग करके पाक-साफ होने का चोला ओढ़ लेते हैं।

आज भी उनका शुक्रिया अदा करता रहता हूं, जिन्होंने उस दौर में मेरा साथ निभाया, जब किसी का हाथ मेरे साथ नहीं था। किशोरावस्था तक आते-आते मित्रवर साथियों की संख्या बढ़ने लगी। आज मुझे उनकी गिनती तक याद नहीं है। इतना ही बता सकता हूं कि आज मुझसे नफरत करने वाले बहुत कम है।

जब मैं बालपन में था तो बहुत कम ऐसे थे, जिन्होंने मुझे गिरने-पड़ने और लुढ़कने से संभाला। मैं रेंग-रेंगकर चलने लगा तो मेरे बालमन ने दर्द के ऐसे-ऐसे झमेले झेले, जिन्हें बयां कर मैं आपको दु:ख नहीं देना चाहता। मैं अहसान-फरामोश नहीं हूं। आज भी उनका शुक्रिया अदा करता रहता हूं, जिन्होंने उस दौर में मेरा साथ निभाया, जब किसी का हाथ मेरे साथ नहीं था। किशोरावस्था तक आते-आते मित्रवर साथियों की संख्या बढ़ने लगी। आज मुझे उनकी गिनती तक याद नहीं है। सिर्फ इतना ही बता सकता हूं कि आज मुझसे नफरत करने वाले बहुत कम है। इसी कारण मैं हर जगह पलता हूं, पर आज भी कुछ को खलता हूं। वे मुझे भ्रष्ट तक कह देते हैं फिर भी हंसकर सह लेता हूं, क्योंकि मुझे और मेरे ईमान को वे ही जान और पहचान पाते हैं, जिनके काम मेरी वजह से आसान हो जाते हैं।

मैंने वह दौर भी देखा और जीया है, जब ईमानदारी मेरी राह में हर कदम पर रोड़ा बनती थी और विविध उपमाओं से शृंगारित कर मेरा उपहास उड़ाया करती थी, लेकिन आज उसका अपना दर-दर भटकता है तो मेरा हमराही कहीं नहीं अटकता है। मेरे अपनों को निकम्मा तक कह दिया जाता है फिर भी मैं कड़वा घूंट पीकर रह जाता हूं, पर मैं ही तो हूं, जिसके कारण अपात्र को काम ही नहीं मिलता, बल्कि वह हीरो भी बन जाता है। मुझे अपनाने वाले बिना पढ़े ही परीक्षा पास कर जाते हैं तो दुनिया मेरा नाम धरने लगती है। कोई रिश्वत कहकर पुकारता है तो कोई मेरी भेंट चढ़ा देता है। तोहफा, नजराना और उपहार जैसे छद्म नाम भी मुझे मिले। इसकी मुझे ग्लानि नहीं है, क्योंकि मुझे किसी भी रूप में और किसी भी नाम से देने मात्र से ही मुश्किल से मुश्किल काम भी हो आसान बन जाते हैं। वेदना मेरी तब भी नहीं बढ़ती, जब मुझे घूस, कमीशन, बख्शीश जैसी उपमाओं से नवाजा जाता है पर आशीष मुझे तब खूब मिलती है, जब मेरे ही कारण से किसी का अटका काम राह पकड़ जाता है।

मेरी मान-मर्यादा तो तब धूल-धूसरित हुई, जब मेरा चहेता सींखचों से लौटने से पहले ही फिर से ऐसे ही लेने की ताल ठोकने लगा। मेरे संस्कारों की कलई तो मेरी चाहत ने मंदिर का प्रसाद (चढ़ावा) बोलकर खोल दी। मेरे साथ अनीति तो तब होती है, जब राज के नीति-निर्माता ही राजनीति करने लगते हैं। समाज में आज मैं खूब फल-फूल रहा हूं और लोगों की जेबें गर्म कर रहा हूं। मैं अपना काम पूरी ईमानदारी से बखूबी कर रहा हूं। मैं बांस की मानिंद लचीला और नरम भी हूं, पर फिर भी लोगों की नजर में भ्रष्ट और बेशर्म हूं। लोगों को यह नहीं भूलना चाहिए कि मैं ही कलियुग का शिष्टाचार हूं, क्योंकि मैं भ्रष्टाचार हूं।

मिलूं तो जन्नत, न मिलूं तो मन्नत

आज हर किसी की जरूरत हूं। मेरे बिना किसी का काम नहीं चलता, इसलिए सबकी चाहत भी हूं। मुझे पाकर भी किसी की तृप्ति नहीं होती, बल्कि तृष्णा बढ़ने लगती है। मैं सिर्फ उसका हूं, जिसके पास हूं और जिसके पास मैं हूं, उसके पास सब होते हैं, पर इसे बिडम्बना नहीं तो और क्या कहूं कि जिसके पास मैं नहीं होता, उसका कोई अपना सगा नहीं होता। मैं भगवान तो नहीं, मगर कलियुग में मुझे भगवान से कम नहीं माना जाता।

अपनी लगन में मगन होकर जब कोई ईमानदारी से मेहनत करके मुझे पाता है तो मेरा भी सीना छप्पन ईंची चौड़ा हो जाता है। मगर ग्लानि तब होती है, जब कोई मेरी चाह में पतन की राह पकड़ लेता है। पराकाष्ठा तो तब होती है, जब वह अपने का बेरी (दुश्मन) बनकर मेरे दामन पर खूनी दाग लगा देता है। बाप-बेटे, मां-बेटी, भाई-बहन और पति-पत्नी जैसे पवित्र रिश्ते तार-तार होने का कलंक भी मैं खूब झेलता हूं। मेरे लिए डूब मरने जैसा तो तब हो जाता है, जब अपराध करने और उसे रोकने वालों के बीच गठजोड़ के किस्से जगजाहिर होते हैं। ऐसे ही कारणों से तो कहा जाता है कि दामोदर बैठे रहें, दाम करें सब काम। मेरी आंखों से वे दृश्य आज भी ओझल नहीं हो पाएं हैं, जिनके पास मैं था तो बेशुमार, लेकिन वे मुझे पाने को रोते ही रहे और फिर एक दिन उनके लिए ही रोने वाला कोई नहीं बचा। तब मेरा सिर ऐसा झुका कि मैं चाहकर भी ऊंचा नहीं कर पाया।

मैं नमक की मानिंद मिलूं तो जीवन का स्वाद बना देता हूं पर जरूरत से ज्यादा मिलने पर जायका बिगाड़ भी देता हूं। मेरी नजर में सब समान है, लेकिन जिनके साथ मैं हूं, वहां जन्नत है और जिनके हाथ में मैं नहीं हूं, वे मेरी मन्नतें मांगते फिरते हैं। शर्मिंदा तो मैं तब होता हूं, जब मुझे पाने के लिए मिन्नतें करनी पड़ती हैं।

मेरी चकाचौंध से ही छोटा-बड़ा और अमीरी-गरीबी जैसे शब्द उपजे हैं। इसी चकाचौंध में जब कोई सात पीढ़ी के बंदोबस्त का दंभ भरता है तो यह भूल जाता है कि खाली हाथ आया था, खाली हाथ ही जाना है। हालांकि इंसानी देह त्यागने के बाद मुझे साथ नहीं ले जाया जा सकता। मगर जीते-जी मैं किसी को इतना ऊपर ले जा सकता हूं, जितना तो कोई सोच भी नहीं सकता। अमीरी में मगरूर की गलती को जब सही ठहरा दिया जाए और उसके कुकृत्य तक माफ होने लगें तो फिर यह मेरा मान-मर्दन नहीं तो और क्या है? दिखावा मुझे नहीं सुहाता, पर हर कोई मुझे आसानी से पचा नहीं पाता। बिरले ही होते हैं, जो मुझे पाकर शांत ही नहीं रहते, पचा भी लेते हैं। मुझे पाते ही ऐसा नशा चढ़ने लगता है कि मेरा अपना खुद का नाश करने से भी बाज नहीं आता। उसके निराले शौकों की मदहोशी से मेरा भी तन छलनी और मन व्यथित हो जाता है। पर जब वह मुझे ही मिटाने पर आमादा हो जाता

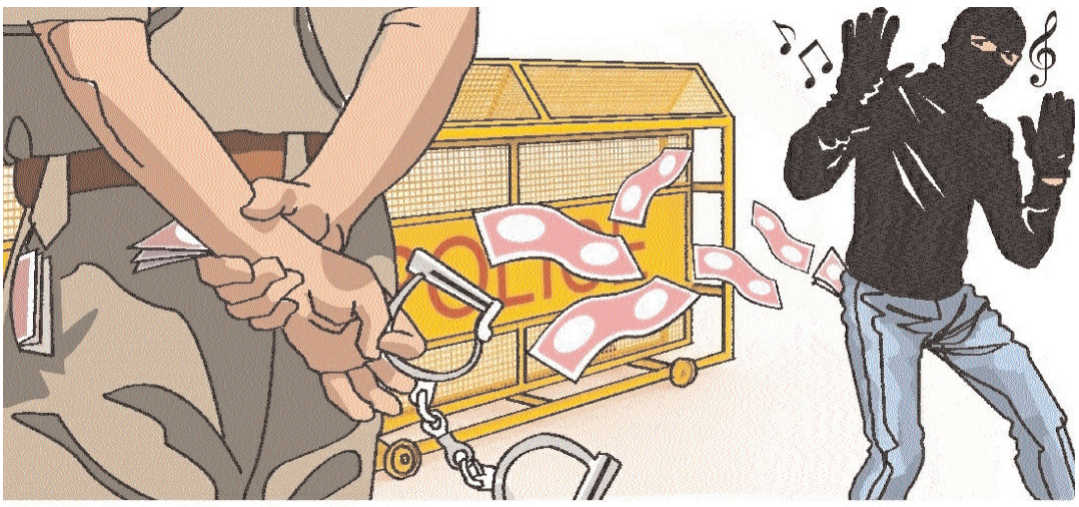

है तो मैं अपना अस्तित्व बचाने की खातिर उसे चूर-चूर करने से भी नहीं चूकता। ऐसा करने पर मुझे दु:ख-दर्द ही नहीं होता, बल्कि ऐसी असहनीय वेदना झेलनी पड़ती है, जिसे बयां करने को तो मेरे कोष में शब्द नहीं हैं। मगर जैसे को तैसा की अनुभूति करके आत्मसंतुष्टि के अलावा कर भी क्या सकता हूं।

मैं ऐसा भोग हूं कि मुझे पाकर कुछ भोग-विलास में आकंठ डूबकर अपना जीवन नारकीय बना लेते हैं। तब मुझे अपना ही यह रूप देखकर ऐसी नफरत होती है, जिसे बयां करना मुश्किलभरा है, लेकिन कुछ ऐसा धर्म-कर्म (दान-पुण्य) करते हैं, जिससे मैं असंख्य दीन-दु:खी, गरीब, बेसहाराओं की दुआएं पाकर फूला नहीं समाता। विविधताओं से परिपूर्ण मेरे रंग-रूप के साथ ही नाम भी बहुतेरे हैं। मैं वैध हूं पर मुझे पाने के तरीके जरूर अवैध हो सकते हैं। काला तो तब कहलाता हूं, जब कोई मुझे अनैतिक तरीके से पा जाता है। अपवादों को छोड़ दें तो कोई किश्मत के भरोसे मुझे नहीं पा सकता। मंदिर में चढ़ावा, स्कूल में फीस (शिक्षण शुल्क), शादी में दहेज, तलाक होने पर गुजारा भत्ता कहलाता हूं।

मैं नए-नए रिश्ते-नातों का ताना-बाना बुनता रहता हूं, तो गहरे रिश्ते को तोड़ने का किरदार भी मैं ही निभाता हूं। मैं यह कहूं कि सारे फसाद की जड़ हूं तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। मैंने कभी किसी को ठगा नहीं, पर मैं किसी का सगा भी नहीं। तभी तो कहा जाता है, बाप बड़ा ना भईय्या, सबसे बड़ा रुपय्या।

वाह! रे पैसा, मुझे यूं ही नहीं कहा जाता। स्वार्थवश देने पर कर्ज, न्याय में अदा करने पर जुर्माना, सरकार ले तो कर (टैक्स), राजकीय सेवा से निवृत्त होने वाले को पेंशन में मिलता हूं। अपहर्ताओं के लिए फिरौती, होटल में टिप, बैंक से लेने पर ऋण और कार्मिकों को देने पर वेतन, सेवा के बदले स्वरूप में गिफ्ट (उपहार) तो जबरन लिए जाने पर रिश्वत, काम के बदले लेने पर दलाली (कमीशन) की संज्ञा पाता हूं। कुछ तो मुझे भ्रष्टाचार की उपमा तक दे देते हैं पर जब मेरे कारण काम बन जाता है तो मैं शिष्टाचार के रूप में अंगीकार कर लिया जाता हूं।

मैं हूं तो कुछ नहीं। मगर मुझसे ही आज हर किसी की इज्जत तय होती है। किसी का हाथ पकड़ लूं तो कद्र बढ़ा देता हूं और छोड़ दूं तो ऐसी-ऐसी बेकद्री होने लगती है कि उसके सगे ही उसे दो कौड़ी का बताने लगते हैं। इससे मुझे ही खुद से घृणा भी होने लगती है। मैं नए-नए रिश्ते-नातों का ताना-बाना बुनता रहता हूं, तो गहरे रिश्ते को तोड़ने का किरदार भी मैं ही निभाता हूं। मैं यह कहूं कि सारे फसाद की जड़ हूं तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, लेकिन फिर भी सब मेरे पीछे पागलों की भांति ना जाने क्यूं दिवाने होते हैं? हालांकि मैंने कभी किसी को ठगा नहीं, पर मैं किसी का सगा भी नहीं। तभी तो कहा जाता है, बाप बड़ा ना भईय्या, सबसे बड़ा रुपय्या। मुझसे मोह पालना बुरा नहीं, लेकिन मेरी मोह माया के भंवरजाल में उलझकर अपना अपनों से मोहभंग ना कर बैठे। मुझे सालती इस फिक्र का जिक्र करना इसलिए जरूरी हो गया है कि मुझे पसंद तो करो, पर सिर्फ इस हद तक कि लोग आपको नापसंद न करने लगें। मगर ऐसा जानकर कोई अनजान बना रहे तो मैं कर भी क्या सकता हूं?

हरि रूठे गुरू ठौर है, गुरू रूठे नहीं ठौर

मानव जीवन से अज्ञानता रूपी अंधकार को मिटाना ही मेरा मूल ध्येय है। तम से उजाले की ओर ले जाने को मैं ध्यानमग्न ही नहीं रहता, अपने लक्ष्य से टस से मस तक नहीं होता। मेरी थकान तब काफूर हो जाती है, जब शिष्य बुलंदी छूता है। भवसागर पार कराने का वैतरणी रूपी जरिया भी हूं पर बदलते वक्त से तो खुद को बचा नहीं पाने का मलाल हर घड़ी अखरता है। अब तो गुरू पर्व भी औपचारिताओं तक सिमट सा गया है। कलियुगी छाया तो मेरी अपार महिमा तक को धूमिल करने लगी है। मुझे भगवान से बड़ा माना जाता है पर कलंकित तो मैं तब होता हूं, जब मेरे कुछ अपने (गुरू) कुकृत्य ही नहीं, दुष्कर्म तक कर बैठते हैं।

उद्भव के साथ ही मेरा सम्मान होने लगता है, जिसे कायम रखना मेरा नैतिक धर्म और कर्तव्य है, पर स्वाभिमान को ठेस तो तब पहुंचती है, जब मेरी जमात के कुछ अनैतिक ही नहीं, अधर्मी तक हो जाते हैं। हर मानव को मैं सबसे पहले मां स्वरूप में मिलता हूं, तभी तो जननी को प्रथम गुरू का दर्जा प्राप्त है। फिर अक्षर ज्ञान कराने के नाते मिलता हूं। उसके बाद तो मैं जीवनभर उसे किसी ना किसी रूप में मिलता ही रहता हूं। कर्म पथ ही नहीं, कर्तव्य पथ और धर्म पथ का मार्ग भी मैं ही दिखाता हूं।

हर मानव को मैं सबसे पहले मां स्वरूप में मिलता हूं, तभी तो जननी को प्रथम गुरू का दर्जा प्राप्त है। फिर अक्षर ज्ञान कराने के नाते मिलता हूं। उसके बाद तो मैं जीवनभर उसे किसी ना किसी रूप में मिलता ही रहता हूं। कर्म पथ ही नहीं, कर्तव्य पथ और धर्म पथ का मार्ग भी मैं ही दिखाता हूं। मानव जीवन में मेरा योगदान मात्र उसकी पढ़ाई तक सीमित नहीं, अंतिम सांस तक होता है।

मानव जीवन में मेरा योगदान मात्र उसकी पढ़ाई तक सीमित नहीं, अंतिम सांस तक होता है। फर्क सिर्फ इतना होता है कि मेरी सार्थकता के मायने बदल जाते हैं और तब मैं पथप्रदर्शक, मार्गदर्शक, उस्ताद जैसे शब्दों से अलंकृत होता हूं। मेरी कोई जात नहीं होती और कर्म ही मेरा धर्म है पर बदलते दौर में तो ऐसा धर्मगुरू बन गया हूं, जो जातियों में बंटा नजर आता हूं। रूप-स्वरूप ही नहीं, मेरे नाम भी बहुतेरे रहे हैं। सबसे पहले मुझे गुरूदेव कहलाने का सौभाग्य मिला, जो आज भी जीवंत है। फिर गुरूजी, मास्साब, मास्टर जी, आचार्य, अध्यापक, शिक्षक और अब

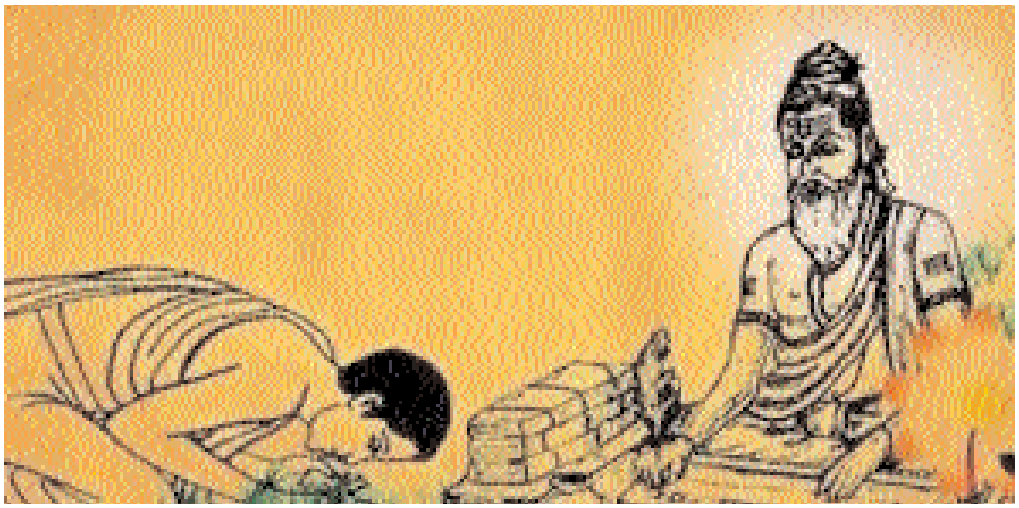

सर कहलाने लगा हूं। कुछ तो मुझे आज भी उस्ताद कहते ही नहीं, मानते भी हैं। पहले मैं गुरुकुलों में ही रहता। फिर पाठशालाओं में मिलने लगा। इसके बाद स्कूलों में जा पहुंचा और अब कोचिंगों में भी विद्यमान हूं। मैं जानता ही नहीं, मानता भी हूं कि जीवकोपार्जन के लिए धनार्जन जरूरी है, लेकिन पहले मैं कभी इसके पीछे नहीं भागा पर अब मेरे अपने कोई मौका भी नहीं चूकते। वेदना तो तब होती है, जब यह सुनना पड़ता है कि मैं लोभी ही नहीं, लालची सा हो गया हूं। ऐसा सुनना मेरी विवशता है, क्योंकि मेरी बिरादरी के कुछ ट्यूशन ही नहीं करते, बल्कि बहुधंधी हो गए हैं। यह कहना भी गलत नहीं होगा कि कुछ तो गोरख धंधेबाज तक बन गए।

पहले मेरा काम सिर्फ विद्यादान था पर अब ऐसा नहीं है। जनगणना, पशुगणना, टीकाकरण, चुनाव और मतगणना जैसा काम भी मेरे ही जिम्मे होते हैं। अब तो पोषाहार के लिए रसोईया तक की भूमिका निभा रहा हूं। ऐसे में मेरा मूल उद्देश्य से भटकना स्वाभाविक है पर मैं चाह भी कर कुछ नहीं कर पाता। इन्हीं वजहों के चलते कई बार तो बेवजह दोषी ही नहीं, पाप का भागीदार भी बन बैठता हूं। तंत्र की खामियां भी मैं खूब सहता हूं। कहीं पर्याप्त स्टाफ नहीं होता तो कहीं साधन-संसाधन अपर्याप्त होते हैं। कहीं बैठने को ठौर नहीं तो कहीं मेरा जोर नहीं चलता। ऐसे ही कारणों से ज्ञान प्राप्ति की चाह रखने वालों की राह में रोड़ा बनने की मजबूरी तो मेरी पीड़ा बढ़ा देती है। असहनीय दर्द तो मुझे तब होता है, जब शिक्षा रूपी मंदिर को ताला जड़ने तक को मजबूर होता हूं।

अनीति तो मेरे साथ तब भी कम नहीं होती, जब नीतिगत अभाव का दंश सहने के साथ दु:खी होता रहता हूं। बेइज्जत तो तब भी होता हूं, जब गुरू दक्षिणा का असल हकदार होने के बाद भी इधर-उधर (तबादला) होने तक को मुझे भेंट (रिश्वत) देने को बाध्य होना पड़ता है। डूब मरना तो तब होता है, जब मेरे ही कुछ समुदाय की अगुवाई करने वाले तंत्र के सुर में सुर मिलाकर मेरा शोषण ही नहीं कराते, बल्कि मुझे भी पथभ्रष्ट बना देते हैं।

अनीति तो मेरे साथ तब भी कम नहीं होती, जब नीतिगत अभाव का दंश सहने के साथ दु:खी होता रहता हूं। बेइज्जत तो तब भी होता हूं, जब गुरू दक्षिणा का असल हकदार होने के बाद भी इधर-उधर (तबादला) होने तक को मुझे भेंट (रिश्वत) देने को बाध्य होना पड़ता है। डूब मरना तो तब होता है, जब मेरे ही कुछ समुदाय की अगुवाई करने वाले तंत्र के सुर में सुर मिलाकर मेरा शोषण ही नहीं कराते, बल्कि मुझे भी पथभ्रष्ट बना देते हैं। निजी संस्थानों में तो मेरा ज्ञान अब व्यापार बन चुका है, जहां हो रही दुर्दशा को शब्दों में बयां करना मुश्किल है। फर्जी डिग्री तो गलफांस से कम नहीं है, जो मेरी साख को बट्टा तो लगा ही रहीं हैं, प्रतिष्ठा को भी धूमिल करने पर आमादा हैं। लज्जित तो मैं तब होता हूं, जब मेरे कुछ अपने दक्षिणा (रिश्वत) ही नहीं, लाज तक मांगने से नहीं चूकते। कई बार शिक्षालयों में लाड़लियों की अस्मत से

खिलवाड़ के किस्से सुनकर तो मुझे खुद की ही इज्जत तार-तार होती दिखती है। बांटने से ज्ञान बढ़ता है, इसे आत्मसात ही नहीं करता, बल्कि इसका अनुकरण भी करता हूं, लेकिन बुरा तब लगता है, जब यह सुनना पड़ता है कि ज्ञान बांट रहा है। उन शिष्यों को तो क्या कहूं, जो मेरे चाहने पर भी कुछ सीखना नहीं चाहते। मेरा कोई शिष्य जब बड़ा काम करता है तो मैं प्रफूल्लित होता रहता हूं, पर मेरे लिए वह क्षण कम कष्टकारी नहीं होते, जब वही शिष्य बड़ा होकर बड़ा ही नहीं बन बैठता, बल्कि मुझे भुला देने जैसी भूल भी कर बैठता है। समाज में आज भी मेरा मान बरकरार है, हालांकि पहले से कुछ कम जरूर हुआ है पर इसमें दोष किसका है? सम्मान पाने के मोह में मेरे अपने ऐसी मनमर्जी करते हैं कि जानबूझकर भी फर्जी अर्जी लगाने से बाज नहीं आते और यह भूल जाते हैं कि आत्म सम्मान ही मेरे अस्तित्व की धुरी है पर जब मेरे अपनों का ही वजूद डोलने लगे तो फिर दोष किसके सिर मढ़ूं?, तभी तो गुरूघंटाल जैसे शब्द मेरे कानों में गूंजने लगते हैं। मैं आधुनिक दौड़ में भी पीछे नहीं हूं। अब ऑनलाइन पढ़ाता ही नहीं, सिखाने भी लगा हूं। सलाह-मशविरा भी दे देता हूं। हालांकि पुराने जमाने के मेरे कुछ अपनों को तकनीकी अभाव खलता है पर मेरी दृढ़ इच्छा शक्ति इस मुश्किल से पार भी पा लेती है और शायद यही मेरी महिमा अपरम्पार होने का आधार भी है। मेरी महत्ता का बखान तो संत कबीर वाणी में भी यूं किया है।

बांटने से ज्ञान बढ़ता है, इसे आत्मसात ही नहीं करता, बल्कि इसका अनुकरण भी करता हूं, लेकिन बुरा तब लगता है, जब यह सुनना पड़ता है कि ज्ञान बांट रहा है। उन शिष्यों को तो क्या कहूं, जो मेरे चाहने पर भी कुछ सीखना नहीं चाहते।

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरू आपने, गोविन्द दियो बताय।।

तात्पर्य यही है कि गुरू का दर्जा भगवान से बड़ा बताया है। इसलिए गुरू के बिना ज्ञान की प्राप्ति अंसभव है। कबीरदास जी यह भी मानते हैं...

कबीरा ते नर अंध है, गुरू को कहते और।
हरि रूठे गुरू ठौर है, गुरू रूठे नहीं ठौर।।

अर्थात भगवान के रूठने पर तो गुरू की शरण रक्षा कर सकती है पर गुरू के रूठने पर कहीं भी शरण पाना संभव नहीं है। तभी तो कहा जाता है...

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वराः।
गुरुरेव परंब्रह्मा, तस्मैश्री गुरुवे नमः।।

यानि गुरू ही ब्रह्मा है और गुरू ही विष्णु है और गुरू ही भगवान शंकर हैं। गुरू ही साक्षात परब्रह्म भी हैं। ऐसे गुरू को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूं।

मैं मतदाता हूं...!

छला ही नहीं, ठगा भी जाता

रोजमर्रा में आम होता हूं पर मैं कभी-कभार ऐसा खास भी कि मुझे पाने की चाह रखने वाला मेरा खास बनने को आतुर दिखता है और इसी चाह में ऐसी-ऐसी राह तलाश लेता है, जिनसे तो मैं खुद भी अनभिज्ञ होता हूं। मेरी राय (मत) की कीमत क्या होती है, इसका अहसास मुझे तब होता है, जब मैं छला व ठगा जा चुका होता हूं।

यूं तो मैं गांव, शहर, महानगर क्या, हर जगह होता हूं पर आम दिनों में किसी को नजर नहीं आता। जब नजरों में चढ़ने का सौभाग्य मुझे मिलता है तो मेरी खूब खुशामद होती है। मेरी खिदमत में ऐसे-ऐसे भी नतमस्तक होते दिखते हैं, जो मुझे जानते-पहचानते तक नहीं। इससे मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। पर गम भी मुझे तब कम नहीं होता, जब मतलब पूरा होते ही मैं ठिकाने लगा दिया जाता हूं। मेरे अपनों के खातों में 15-15 लाख आने की बात हो या फिर कालाधन लाने की। 10 दिन में किसानों की कर्जा माफी हो या युवाओं को नौकरी की। सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती महंगाई हो या फिर आसमान छूते डीजल-पेट्रोल और रसोई गैस के दाम। ये ऐसे जुमले हैं, जो हर बार मुद्दे बनकर उभरते हैं। इनसे राहत मिलना तो दूर मेरा अपना आहत जरूर होता है। सब्जबाग तो बहुतेरे दिखाए जाते हैं मगर मेरे अपनों के सपने तब चकनाचूर हो जाते हैं, जब ऐसा कहने वाला खुद ही उन्हें जुमला बताने लगता है।

विघटन या बिखराव किसी के लिए हितकारी नहीं। घर-परिवार हो या समाज। राज्य हो या फिर राष्ट्र। इनकी एकता और अखण्डता को अक्षुण्य बनाए रखने में मेरी बड़ी भूमिका है। पक्ष-विपक्ष के समतुल्य होने या मेरे अल्पमत पर बहुमत के भारी पड़ने पर तो मेरी जिम्मेदारी और ज्यादा बढ़ जाती है, तब मुझे अपनाने के ऐसे-ऐसे जतन होते है, जो कई बार खुद मेरे पतन का कारक बन जाते हैं। पद या सत्ता की लोलुपता में ढेरों प्रलोभन भी मुझे मिलते हैं। भौतिकवादी दौर में बिक ही नहीं, इतना गिर भी जाता हूं कि दो घूंट गले में उतरते ही मान-मर्यादा तक भूल बैठता हूं। पर होश संभालूं, उससे पहले कई बार तो कलंकित भी हो जाता हूं। पछतावा भी तब बेमानी लगने लगता है, जब चिड़िया खेत को ही चुग चुकी होती है।

साहित्यिक व सांस्कृतिक विविधताओं की गर्वानुभूति के बीच ग्लानि तब होती है, जब मुझे जाति-धर्म और साम्प्रदायिक रंगों में रंग दिया जाता है। क्षेत्रवाद और राष्ट्रवाद के रंगों से सराबोर होकर तो मैं अपना कर्तव्य पथ तक भूल जाता हूं। कभी सिक्कों की खनक तो कभी पायल की झनकार के बीच मेरा मोल-भाव होता रहता है। मुझे पाने की खातिर मेरे द्वार पर दस्तक दी जाती है। मुझे समझाया व मनाया ही नहीं, रिझाया भी जाता है। मुझे लुभाने को तर्क-वितर्क भी दिए जाते हैं, यहां तक तो जायज है पर जब कुतर्क शुरू होने लगते हैं तो ऐसा लगता

है, जैसे आस्तीन में सांप पाल रहा हूं। खुलेआम इनकी बदजुबां से निकलते अमर्यादित बोल तो घृणा तक पैदा कर देते हैं। इस बीच, सब यह भूल जाते हैं कि मैं ऐसा कोहिनूर हूं, जो अनमोल होता है। सुन और बोल ना सकूं तब भी पीछे पड़े रहते हैं। निढ़ाल होकर बिस्तर पकड़ लूं तो भी मुझे कोई छोड़ना नहीं चाहता। मुझे दिवास्वप्न भी कम नहीं दिखाए जाते। मेरे विकास के वादे और दावे भी खूब किए जाते है पर बाद में मेरे साथ कैसा सलूक होता है। यह किसी से छिपा नहीं है। मेरी सुरक्षा के पुख्ता बंदोबस्त अब भी होते हैं पर फिर भी होती हिंसा के बीच बहते किसी अपने के खून को देख मुझे रोना आ ही जाता है।

मेरी नैतिकता को तब भी कम ठेस नहीं पहुंचती, जब मुझे पाने की जुगत में ऐसे-ऐसे हथकण्डे अपनाए और दांव लगाए जाते हैं, जिन्हें देख व सुनकर अनैतिकता भी शर्मसार हो जाती है। मुझे पाकर माननीय बन इतराने व इठलाने वाले अकूत धन-सम्पत्ति के मालिक कैसे बन जाते हैं? यह गणित आज तक मेरे भी समझ में नहीं आया, पर जब वे भरी पंचायत में झूठ भी बोलने लगते हैं तो मैं ऐसा दागदार हो जाता हूं, जिन्हें मिटाया भी नहीं जा सकता।

उद्‌भव के साथ ही निर्भीक होकर मुझे निष्पक्ष अपने मत (वोट) का दान (देने) करने का संवैधानिक अधिकार मिलता है, पर क्या मैं सही मायने में ऐसा कर पाता हूं? यह खुद मेरे लिए चिंता के साथ चिंतन और मनन करने का विषय है। मेरे लिए सोचनीय और विचारणीय यह भी है कि मैं बहकावे में कितना बहता हूं? किसी भी दान का महत्व तभी होता है, जब वह गुप्त रहे। इसलिए मुझे भी सार्वजनिक नहीं करते, लेकिन कई बार गोपनीयता पर उठते सवाल मुझे लज्जित जरूर कर देते हैं। पुराने दौर में मैं मतपत्र पर मुहर लगाता था, जिसे आम बोलचाल में ठप्पा भी कहा जाता था। मतदाता (वोटर) मैं तब भी था और आज भी हूं पर दौर बदला तो मैं भी मशीनीकरण के प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। आज बटन दबाकर ही नहीं, कई दफा तो ऑनलाइन क्लिक से भी अपने मताधिकार का उपयोग करता हूं। समय के साथ मुझे मोहित करने के लिए प्रचार-प्रसार के तौर-तरीके ही नहीं बदले, बल्कि यह कहूं कि हाइटेक हो गए हैं तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। पहले जहां चौपालों पर पर्चों के चर्चे होते थे तो अब सोशल मीडिया पर चुनावी किस्से चर्चित होने लगे हैं।

किसी भी दान का महत्व तभी होता है, जब वह गुप्त रहे। इसलिए मुझे भी सार्वजनिक नहीं करते, लेकिन कई बार गोपनीयता पर उठते सवाल मुझे लज्जित जरूर कर देते हैं। पुराने दौर में मैं मतपत्र पर मुहर लगाता था, जिसे आम बोलचाल में ठप्पा भी कहा जाता था। मतदाता (वोटर) मैं तब भी था और आज भी हूं पर दौर बदला तो मैं भी मशीनीकरण के प्रभाव से अछूता नहीं रह सका।

मैंने चुनने (चुनाव) का वह दौर भी देखा और जीया ही नहीं, वह दंश भी झेला है, जब मुझे कोई पहचानता भी नहीं था। फिर आए शेषन युग (टी.एन. शेषन, पूर्व चुनाव आयुक्त) ने तो मेरा ऐसा डंका बजवाया, कि मैं खुद ही नहीं, दुनिया भी मेरा महत्व जानने और समझने लगी तो मैं धन्य-धन्य हुए बिना नहीं रह सका। पर यह मेरा भ्रम तो नहीं था, तभी तो आज मैं ही नहीं, मेरे अपने भी ऐसा असहाय युग का दंश देख व झेल रहे हैं, जहां किसी भी तरह और किन्हीं भी कारणों से मेरा मखौल उड़ता है तब उत्तरदायी मौन साध लेते हैं तो मेरा हताश और निराश होना गलत कहां?

इसी दौर में मुफ्त बंटती रेवड़ियों को देख मैं खुद भी ललचाए बिना नहीं रह पाता, जिसका मलाल मुझे भी खूब होता है। मैं विद्रोही नहीं, पर जब आपसी भाईचारा, सद्‌भाव व सौहार्द बिगाड़ने जैसा कृत्य होता है तो मेरे ललाट पर कट्‌टरपंथी होने का ऐसा कंलक लग जाता है, जिसे मिटाना नामुमकिन है। साम्प्रादायिक अखण्डता को बिखण्डित होने से बचाने के जिम्मेदार जब अपने चक्षु बंद कर लेते हैं तो ऐसा मुझे सतत् सालता है। इन सबके बीच, देश के तीन स्तंभों को अपने कर्तव्यों का भान कराने का माद्‌दा रखने वाला खुद चौथा स्तंभ जब पथभ्रमित होता है तो यह मन को कचोटता ही नहीं, अपितु सोचने को विवश भी करता है। सोशल मीडिया के इस दौर में गोदी मीडिया के तो कहने ही क्या?

नाजायज कुछ नहीं, सब कुछ जायज

राज को नीति से करना मेरी परिभाषा है और नीति निर्धारण ही मेरी अभिलाषा, पर अनीति की बढ़ती संलिप्तता मेरा राजफाश ही नहीं करती, बल्कि चीरहरण तक करने लगी है। यह मुझे खूब खलता है पर इस फसाद की जड़ भी शायद में ही हूं। मेरी ऐसी धूमिल छवि कभी नहीं थी, जैसी सबको अब नजर आती है। मेरा भी ईमान था और आज भी है पर अब तो गिरगिट की मानिंद रंग बदलना जैसे मेरा स्वभाव सा हो गया है। मुझमें नामुराद को भी फर्श से अर्श तक पहुंचाने का माद्दा है तो अर्श से फर्श पर लाने की कुब्बत भी। मेरी इसी ताकत के चलते बड़े से बड़ा ताकतवर भी झुकने को मजबूर नजर आता है।

मैं मर्यादित ही नहीं, मेरा गरिमामयी व गौरवशाली इतिहास भी रहा, जिसे आज भी गाहे-बगाहे याद किया जाता है पर अब ना जाने किसकी नजर लगी कि मेरे अपने (नेता) अधीर ही नहीं दिखते, बल्कि संयम भी खोते नजर आते हैं। नीति निर्माण की नैतिक जिम्मेदारी इनके ही कंधों पर थी और आज भी है पर अब स्वार्थ की बू ज्यादा आने लगी है। खुशी तो मुझे तब होती थी, जब मेरे अपने दृढ़ इच्छा शक्ति से नैतिक मूल्यों की स्थापना ही नहीं करते, बल्कि उनकी रक्षा भी करते थे। ऐसा होता तो आज भी है पर अब उनका पतन ज्यादा होता है। नीति और नीयत ठीक होने से ही नेतृत्व भी साफगोई से करता, लेकिन गम यह है कि चालाकी ने उसकी चाल ही नहीं, चरित्र व चेहरा भी बिगाड़ दिया है। तभी तो मेरे अपने की भाषा असंसदीय और आचरण अमर्यादित होने लगा है। थोथे घोषणा पत्र और झूंठे वादों व दावों ने तो मेरी कथनी और करनी में अंतर पैदा कर दिया है। सुदृढ़ पाचन शक्ति से मैं ऐसे-ऐसे राज पचा जाती हूं, जो वर्षों तक नहीं उगलती पर उनके बेपर्दा होते ही मुझे खुद से घृणा भी कम नहीं होती।

पहले गांव की चौपाल पर खेलना (राजनीति करना) मुझे खूब भाया फिर शिक्षालयों में खेली जाने लगी और अब तो शहर से लेकर राज्य और राष्ट्रीय पंचायतों में भी खेलने का खूब लुत्फ उठाती हूं। फर्क सिर्फ इतना है कि पहले गरीब भी मेरे साथ खेल लेता था, लेकिन अब मैं धनबल और बाहुबल की होकर रह गई हूं। पढ़ना मेरे लिए जरूरी नहीं पर गढ़ना मुझे बखूबी आता है तभी तो अनपढ़ भी राजशाही सुख भोग लेता है। यूं तो आज भी मुझे समाजसेवा का पर्याय समझा जाता है। यही ध्येय लेकर हर एक मुझे अपनाता भी है पर फिर मेरा सगा मुझे ही ठगा सा छोड़ ही नहीं देता, बल्कि खुद अपनी और अपनों की सेवा-सुश्रूषा में ऐसा मगन रहता है कि सिर्फ जेब भरना ही उसका मूल उद्देश्य है। सत्ता रूपी महल की चाबी मैं ही तो हूं, जिसे पाने के लिए हर कोई आतुर नजर आता है और मुझे पाने के लिए ऐसी षड़यंत्रकारी सियासी बिसात बिछाई जाती हैं, जिन्हें सुन और देखकर तो मैं खुद भी दांतों तले अंगुली दबाने को मजबूर हो जाती हूं। ऐसा करने वालों को धिक्कारने के लिए तो मेरे कोष में

शब्द तक नहीं हैं। मैं सर्वव्यापी हूं। घर-परिवार ही नहीं, समाज में भी मेरा दखल कम नहीं है। संगठन निजी या फिर सरकारी, आज कोई भी मुझसे अछूता नहीं है। मुझे अपनाकर मेरे अपने अपनों को पराया तक समझने की भूल कर बैठते हैं और दोषारोपण मेरे सिर मंढ़ा जाता है। ऐसे हालात में अपनों को हलाल करने का मलाल तो मुझे भी खूब होता है पर मैं अब कर भी क्या सकती हूं? मैं निष्पक्षता की पक्षधर हूं पर पक्ष-विपक्ष में बंटे मेरे अपनों ने मुझ पर पक्षपात का ऐसा बदनुमादाग लगा दिया है, जिसे मैं चाहकर भी मिटा नहीं पाती। मेरा रवैया हमदर्दी से भरा है पर मेरे अपनों की बेदर्दी तो मेरे दामन पर हठधर्मिता रूपी दाग तक लगा देती है। मेरी नीति तो पाक साफ है पर ऐसा सिर्फ सत्तापक्ष ही मानता है। विपक्ष तो मुझे अनीति की संज्ञा देकर कोसता रहता है, जो मुझे कम नहीं कचोटता पर जब वहीं सत्ता पक्ष बनकर मेरा गुणगान करने लगता है तो मुझे आत्म संतोष करना ही पड़ता है। मैं सबके लिए जितना उपयोगी हूं, उतना ही मेरा दुरुपयोग भी होता है। मेरे अपने अपनों के हित साधने को ऐसी-ऐसी गलियां निकाल लेते हैं, जिनका तो मुझे भी भान नहीं होता। मेरा मान-मर्दन तो तब होता है, जब मेरा अपना स्वार्थवश ऐसी कुटिल चालें चलता है, तब मैं मन-मसोस कर रह जाती हूं।

मेरे अपने अपनों के हित साधने को ऐसी-ऐसी गलियां निकाल लेते हैं, जिनका तो मुझे भी भान नहीं होता। मेरा मान-मर्दन तो तब होता है, जब मेरा अपना स्वार्थवश ऐसी कुटिल चालें चलता है, तब मैं मन-मसोस कर रह जाती हूं।

मैं सच्ची ही नहीं, ईमान की पक्की भी हूं पर मेरे अपनों की झूठ का बोलबाला इतना हो गया है कि मेरी आवाज नक्कारखाने में तूती साबित हो रही है। कर्म ही मेरा धर्म है फिर भी अधर्मी होने का पाप ढोती हूं। मैं स्वप्न नहीं देखती पर मेरे अपने ऐसे-ऐसे दिवास्वप्न दिखा देते हैं, जिन्हें देखकर तो मुझे भी भ्रम सा होने लगता है और इसी भ्रमजाल में फंसा वतन तक अमन के लिए जतन करने को छटपटाता नजर आता है। मैं न धार्मिक हूं और न साम्प्रदायिक, पर मेरे अपनों ने जाति, धर्म व क्षेत्रवाद रूपी चोले ओढ़कर मुझे कट्टरपंथी तक बना डाला है, जिससे मेरा जी-बेचैन होता रहता है। मेरी आत्मा तब बिलख उठती है, जब मेरे अपने उन्मादी होकर फसाद पैदा कर देते हैं तो ऐसे में वतन की सुलगती राख को मेरी अश्रुधारा ठण्डा करे भी तो कैसे?

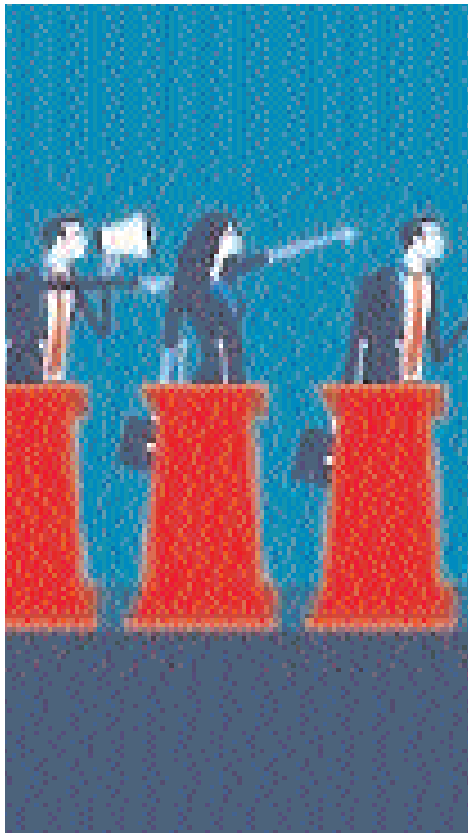

मेरा भी मान-सम्मान और स्वाभिमान है पर शायद मेरे अपनों के लिए इनके कोई मायने नहीं है। मेरा आत्मबल भी कमजोर नहीं है, तभी तो लोकतंत्र रूपी मंदिर की मानिंद मुझे पूजा जाता है। मैं विकासपरक हूं पर मेरे अपने की सियासत विकास की राह में रोड़ा ही नहीं बनती, बल्कि मुझे विनाशकारक बनने जैसा दंश भी झेलना पड़ता है। मैं निर्भीक और निडर भी हूं पर मुझे आज भी डर सिर्फ अपने मत का दान करने वाले (मतदाता) से ही लगता है, जो मेरी हर चाल को भांप ही नहीं जाता, बल्कि चुनाव में उसे नेस्तनाबूद भी कर देता है। अफसरशाही तो मेरे आगे हमेशा से नतमस्तक रही है। आदर्शवादिता की बात करना तो तब बेमानी सा लगता है, जब झांकने पर ज्यादातर हमाम में नंगे नजर आते हैं। मेरे के लिए कुछ भी नाजायज नहीं है, तभी तो कहा जाता है, राजनीति में सब जायज है। हालांकि लैनिन का कथन आज भी अक्षरसः मेरी स्मृति में है, जिसमें मुझे उस वैश्या समान माना, जो दिन में कई बार वस्त्र बदल लेती है।

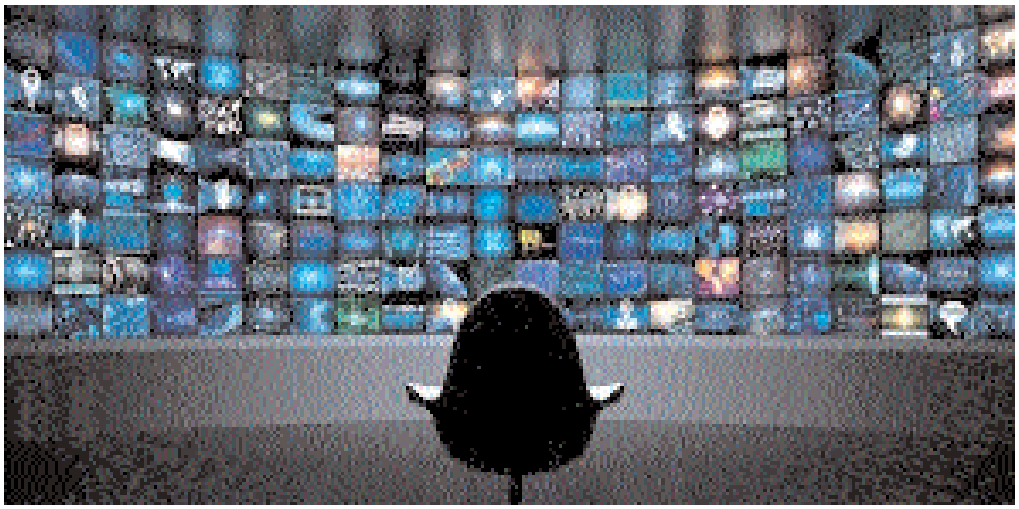

बाजारवाद का रंग न कर दे साख भंग

सूचना देना ही मेरा मूल ध्येय रहा है, आज भी है और आगे भी रहेगा। बदलाव से मैं भी अछूता नहीं बचा। निष्पक्ष, निर्भीक और निडरता मेरा भरोसा रहा है पर गहराते संदेहरूपी बादल मुझे असहज करने लगे हैं। अब भी मुझ पर भरोसा तो है पर सोच-समझकर। कई बार तो मेरे क्रियाकलाप पर चिंतन-मनन भी होने लगा है। नए दौर की सहूलियतों ने मुश्किलें भी कम नहीं बढ़ाई। प्रतिस्पर्धा में हवा-हवाई सूचनाएं यूं ही साख को बट्टा नहीं लगा रही, आखिर मैं बाजारवाद के रंग में रंगने जो लगा हूं।

समाज और राष्ट्र की दशा ही नहीं बदलता, बल्कि दिशा भी दिखाता हूं, जिस पर मुझे भी गर्वानुभूति है। जन-जन की समस्याओं पर मुखर ही नहीं होता, उनके समाधान का जरिया भी बनता हूं। पथभ्रष्टों को ललकार व धिक्कारता भी हूं। उन्हें कर्तव्यपथ पर लाने का हर वह जतन करता हूं, जो वतन में अमन के लिए जरूरी होता है। देश की विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका को भी समय-समय पर सतर्क व सजग करता रहता हूं। तभी तो मुझे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहलाने का गौरव प्राप्त है।

गर्व तो तब भी कम नहीं होता था, जब मेरा कामकाज प्रेरक ही नहीं, ज्ञानार्जन का भी जरिया था। भाषागत सुधार का पर्याय रहा पर अब अशुद्धियों व गलतियों से दूर नहीं हूं तो टीका-टिप्पणियां तक सहने को मजबूर भी हूं। मैं पहले मिशन हुआ करता था, जिसका पाक-साफ व सार्थक उद्देश्य भी होता था। जांच-परखने के बाद ही सूचनाएं देता था। मानवीय भूल को स्वीकारने में हिचकता भी नहीं था पर अब ये सब गुजरे जमाने की बात लगती हैं। हालांकि अभी सब कुछ नहीं बिगड़ा है, जिसका मुझे संतोष भी है।

मेरा काम पहले छपता था। फिर दिखने लगा पर अब बोलने लगा है और बोलते-बोलते तो बड़बोला तक हो गया हूं। मेरा अपना पहले खबरनबीस के नाम से जाना-पहचाना जाता था, जो अब कलमकार और मीडियाकर्मी बनकर रह गया है। ऐसे पत्रकार पहले चुनिंदा ही हुआ करते थे पर नए दौर में इनकी बाढ़ सी आ गई है। संस्थान भी अब मीडिया हाउस बन गए हैं। मेरी कलम छपती अब भी है पर अब तौर-तरीका बदल गया है। क्योंकि ज्यादातर तो सरकारी सुख-सुविधाएं भोगने मात्र तक सीमित प्रतियां छापकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री कर रहे हैं। प्राकृतिक सिद्धांत के मुताबिक बड़ी मछली छोटी को निगल जाती है। ऐसा मेरे यहां भी खूब हुआ है और हो रहा है। राष्ट्रीय स्तर से राज्य स्तर के बने तो राज्य से जिले तक उतर आए। ऐसे में जिला और उससे छोटी जगहों के सामने राष्ट्रीय व राज्यस्तरीय के मुकाबले चुनौतीभरी मुश्किलें ही नहीं बढ़ी, बल्कि उनका टिक पाना ही दूभर हो गया। यह चिंता मुझे सालती ही नहीं, झकझोर भी देती है पर मैं करूं भी तो क्या?

मेरा भी मान-सम्मान और स्वाभिमान है पर अब इसे बचा पाना मुश्किल सा लगने लगा है। मेरे कुछ अपने क्षणिक स्वार्थ में ऐसे कृत्य कर बैठते हैं, जिससे मेरे दामन पर दाग लग जाता है। कुछ तो मुझे नीलाम कर मेरी इज्जत को ही तार-तार कर देते हैं पर शायद उन्हें फर्क नहीं पड़ता। पिछले तीन दशक में सरकारी कर्मचारी कई वेतन आयोग ले चुके, मगर मेरे अपने आज भी मोहताज हैं। यह दु:ख मुझे भी खूब सालता है। सुरसा के मुहं की तरह बढ़ती महंगाई में मेरा अपना किस तरह अपनों का लालन-पालन कर रहा होगा। यह सोचकर मुझे तरस ही नहीं आता, बल्कि रोना तो तब आता है, जब मोर की मानिंद मेरा अपना खुद के डगमगाते कदमों की ओर झांकता है। पहले की अपेक्षा मेरे अपनों के हाल कुछ सुधरे हैं पर ज्यादातर की बेहाली का आलम तब दिहाड़ी मजदूर जैसा नजर आता है, जब नौकरी पर होते हुए स्थाई कर्मचारी नहीं होने का दंश झेलते ही नहीं, भोगते भी हैं।

शोषण और अन्याय के खिलाफ मेरा अपना खूब संघर्ष करता है पर जब वह खुद इनका शिकार बनता है तो फिर उसकी पीड़ा हरने कोई आगे नहीं आता, जिसका दु:ख मुझे भी कम नहीं होता। वेदना तो तब असहनीय हुई, जब मेरे कुछ अपनों ने हक पाने को न्याय की चौखट पर दस्तक दी। अधिकार भी मिला पर दांवपेचों की उलझन में ऐसा उलझा, जो अभी तक अनसुलझा है। मेरे कई अपने तो परिवार के लिए रोजी-रोटी तक की जुगत में भटकने को मजबूर हैं। मेरा गरिमामयी व गौरवशाली इतिहास रहा है पर डिजिटल दौर में सोशल मीडिया का बढ़ता दुरुपयोग ऐसा बदनुमादाग है, जो मिटाए नहीं मिटता। कई बार तो अमर्यादित नजारें शर्मसार करते नजर आते हैं। कलंकित तो तब होता हूं, जब बाजारवाद के चलते फूहड़पन से ओतप्रोत दृश्य आंखों के सामने होते हैं। मेरा सफर कम रोचक नहीं रहा। कुर्ता-पाजामा या कमीज-पाजामा पहने बगल में झोला (थैला) लटकाए घूमना ही मेरे अपने की खास पहचान रही। एक-एक अक्षर को हाथ से सैट कर बड़े शहरों में सीमित छापाखानों में अखबार छपते थे, जो अब अत्याधुनिक मशीनों से निकलते है। पहले प्रमुख खबरों को ऊंची आवाज में बोलते हुए समाचार-पत्र बेचने का अंदाज अनूठा होता था।

शहरी क्षेत्रों में प्रमुख स्थलों/चौराहों पर चॉक से बोर्ड (सूचना पट्ट) पर समाचार लिखे जाते थे, जिसकी जगह अब स्वचालित डिजिटल बोर्ड ने ले ली। पहले अखबारों का आकार (साइज) छोटा होता था, जो अब बड़ा ही नहीं, रंग-बिरंगा भी हो गया है। समय बदला तो घर-घर ही नहीं, हाथ-हाथ में मेरी पहुंच बनी। निजीकरण से बड़े नेटवर्क भी फेसबुक, यूट्यूब, व्हाट्सएप और टयूटर जैसे सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर आने लगे तो मेरी पहुंच बढ़ी पर प्रतिस्पर्धा (टीआरपी) के चक्कर में तो मैं खुद घनचक्कर सा हो जाता हूं। दिनभर प्रदर्शित एक ही खबर बोर ही नहीं करती, पका देती है। मुद्दे पर बहस कम, चिकचिक ज्यादा होने लगी है। अमर्यादित व असंसदीय भाषा सुनकर तो मेरा भी सिर शर्म से झुक जाता है पर उनके लिए क्या कहूं, जो बेशर्मी रूपी चादर ओढ़े हैं। चुल्लूभर पानी में डूब मरने जैसे हालात तो तब पैदा होते हैं, जब सफेद झूठ भी दृढ़ता के साथ परोसा जाता है और हर गलती दूसरे के सिर मढ़ी जाती है। मुझ पर तंज भी कम नहीं कसे जाते, अब तो मुझे गोदी मीडिया से भी अलंकृत किया जाने लगा है।